अग्निशिखा
अखिल भारतीय पत्रिका
जनवरी २०२३
श्रीअरविन्द
की
भविष्यसूचक कुछ कविताएँ

विषय-सूची

श्रीअरविन्द की भविष्यसूचक कुछ कविताएँ तथा 'सावित्री' से कुछ पद

(श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)

सम्पादकीय		३
श्रीअरविन्द की कविताएँ		
बस एक दिन/रूपान्तर/स्वर्णिम प्रकाश/विकास/ महत्तर योजना/अतियथार्थवादी विज्ञान का स्वप्न		६-१०
वामन नेपोलियन		१०
भाग-२		
'सावित्री' से		१३-२७
लौह युग का अन्त आ गया है (सॉनेट)	श्रीअरविन्द	२७
कवि और लेखकों को सलाहें		२८
कवि और कविता के बारे में		३०

'पुरोधा'

दैनन्दिनी		३३
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' सच्चाई का अभाव न हो	नवजातजी	३६
हरी-हरी दूब पर (कविता)	श्री अटल बिहारी वाजपेयी	३९
एक लघु कथा	'हिन्दू सभा वार्ता' से	४०
किसी के काम आओ	'वैचारिकी' से	४१
... मेरी ही चक्की का तो पिसा आटा खाया था!	वन्दना	४२

सम्पादकीय : पिछली शताब्दी के पहले पचास सालों में श्रीअरविन्द ने मानवता की उत्तेजना और उठा-पटक को क़रीब से देखा था। वह था सचमुच क्रमविकसनशील संकटकाल जो उस अन्धड़ और तूफ़ान में 'नूतन सृष्टि' के बीज बो गया था।

श्रीअरविन्द के १५०वें जन्मदिवस के शुभ उपलक्ष्य में हम इस बार उनकी कुछ भविष्यसूचक कविताएँ तथा उनके महाकाव्य *'सावित्री'* से भी कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहे हैं। उनके बारे में श्रीमाँ ने हमें एक बहुत शुभ-सुन्दर सन्देश दिया है :

श्रीअरविन्द भविष्य के हैं; वे भविष्य के सन्देशवाहक हैं। वे अब भी हमें 'भागवत संकल्प' द्वारा निर्मित उज्ज्वल भविष्य को जल्दी चरितार्थ करने के लिए जिस राह का अनुसरण करना चाहिये वह दिखलाते हैं।

जो मानवजाति की प्रगति और भारत की ज्योतिर्मयी नियति के लिए सहयोग देना चाहते हैं, उन सबको भविष्यदर्शी अभीप्सा और प्रबुद्ध कार्य के लिए मिल कर काम करना चाहिये।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. १४

Bonne Année
blessings

१९६७
मनुष्यो, देशो और महाद्वीपो !
चुनाव अनिवार्य है :
सत्य या फिर रसातल
'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. १९९

१९६७ के नव वर्ष के सन्देश में आप कहती हैं कि चुनाव सत्य और रसातल के बीच है। रसातल मुँह बाये सामने दीखता है, फिर भी यह विश्वास है कि इसे मार्ग से हटा लिया जायेगा।

विश्वास उचित ही है। सन्देश केवल उन्हीं के लिए है जो अभी तक सोये हुए हैं और अपनी नींद से काफ़ी सन्तुष्ट हैं।

आपके नव वर्ष के सन्देश में "रसातल" का क्या अर्थ है, या दूसरे शब्दों में, साधक को किस चीज़ से डरना चाहिये?

ठीक इस समय बहुत बड़ा तनाव है। सबने ऐसी स्थिति ले ली है मानों युद्ध आरम्भ करने वाले हों। वह अन्धा आवेग है जिसे मनुष्य अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में ले आते हैं। इस सबके मूल में एक भय है, व्यापक अविश्वास है, और वह है जिन्हें वे अपने "हित" कहते हैं (धन, व्यापार)—इन तीन चीज़ों का संयोजन है। जब मानवता के इन तीन निम्नतम आवेगों को सक्रिय किया जाता है, उन्हीं को मैं रसातल कहती हूँ।

जब व्यक्ति ने भगवान् को पाने के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग करने का निश्चय कर लिया हो, और अगर वह निष्कपट हो, यानी अगर संकल्प निष्कपट हो और उसका निष्कपटता के साथ पालन किया जाये तो बिलकुल किसी चीज़ से भयभीत न होना चाहिये, क्योंकि उसके साथ जो हो रहा है या होगा वह सब उसे इस सिद्धि तक छोटे-से-छोटे मार्ग द्वारा ले जायेगा।

यह भागवत कृपा का उत्तर है। लोग यह मानते हैं कि भागवत कृपा का अर्थ है, तुम्हारे सारे जीवन में सब कुछ सरल और सहज बना दिया जाये। यह सच नहीं है।

भागवत कृपा तुम्हारी अभीप्सा की चरितार्थता के लिए कार्य करती है और सबसे अधिक तत्पर, सबसे तेज़ चरितार्थता पाने के लिए सभी चीज़ों की व्यवस्था की जाती है—अतः डरने की कोई बात नहीं।

भय कपट से आता है। अगर तुम आरामदेह जीवन, अनुकूल परिस्थितियाँ इत्यादि चाहो, तो तुम शर्तों और सीमाओं को लगाते हो, और तब तुम भयभीत हो सकते हो। लेकिन इसका साधना के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १५, पृ. १९९-२००

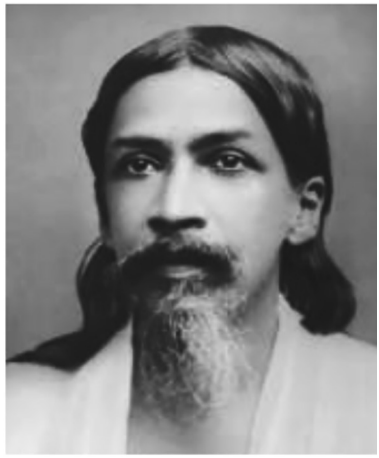

बस एक दिन

थोड़ा-सा और

बस एक दिन और सब अर्धकृत कार्य हुआ समाप्त,
बस एक दिन और अखिल अजन्मे का हो गया आरम्भ;
बस थोड़ा-सा रास्ता, और महान् लक्ष्य उपस्थित,
बस एक स्पर्श, ला देता है वह अशेष दिव्यता।

पहाड़ियों पर पहाड़ियाँ चढ़े और अब
देखो, अन्तिम दारुण भ्रू-शिखर
एक विशाल चट्टान जिस पर
नहीं पड़े किसी के चरण :
बस एक क़दम, और सब है नील गगन और अनन्त भगवान्।

CWSA खण्ड २, पृ. ५४२ **श्रीअरविन्द**

रूपान्तर

एक सूक्ष्म लयिक प्रवाह में चलती है मेरी श्वास;
यह मेरे अंगों का दिव्य शक्ति से करती परिपूरन :
विराट् की सुरा-सदृश मैंने अनन्त का किया है पान।
काल है मेरा नाट्य या मेरा कौतुकपूर्ण स्वप्न।

मेरे प्रकाशमान कोश हैं अब हर्ष का अग्निल आयोजन,
मेरी रोमाञ्चित और शाखिनी शिराओं में हो गया परिवर्तन,
वे बन गयीं आह्लाद की दूधिया और काचाभ सरणियाँ विमल
उस अज्ञात और परम का करने को अन्तःस्रवण।

मैं अब नहीं हूँ रक्त-मांस का उपजीवी आश्रित,
प्रकृति और उसके धूसर विधान का अनुचर;
मैं नहीं इन्द्रियों के संकुल पाश की पकड़ में अब और।
मेरी अदिगन्त आत्मा अप्रमेय दृष्टि के लिए होती है विस्तृत,

मेरी देह ईश्वर का यन्त्र है प्रसन्न और प्राणवान्,
मेरी आत्मा अमर्त्य प्रकाश का विशाल सूर्य महान्।

CWSA खण्ड २, पृ. ५६१

स्वर्णिम प्रकाश

तेरे स्वर्णिम प्रकाश का मेरे मस्तिष्क में हुआ अवतरण
और मन के धुँधले कक्ष हो गये सूर्यायित
प्रज्ञा के तान्त्रिक तल के लिए एक उत्तर प्रसन्न,
एक शान्त प्रदीपन और एक प्रज्वलन।

तेरे स्वर्णिम प्रकाश का मेरे कण्ठ में हुआ अवतरण,
और मेरी सम्पूर्ण वाणी है अब एक दिव्य धुन,
मेरा अकेला स्वर तेरा स्तुति-गान;
अमर्त्य की मदिरा में उन्मत्त हैं मेरे वचन।

तेरे स्वर्णिम प्रकाश का मेरे हृदय में हुआ अवतरण
मेरे जीवन को तेरी शाश्वतता से करता आक्रान्त;
अब यह बन गया है तुझसे अधिष्ठित एक देवालय
और इसके सब भावावेगों का केवल तू एक लक्ष्य।

तेरे स्वर्णिम प्रकाश का मेरे पैरों में हुआ अवतरण;
मेरी धरती है अब तेरी लीलाभूमि और तेरा आयतन।

CWSA खण्ड २, पृ. ६०५

विकास

अदृश्य की योजना में सब कुछ समाप्त नहीं हुआ है।
मन के परे एक और मन है,
जो हमारे ज्ञान की परिसीमा को बुला रहा है।
एक अकल्पित सामञ्जस्य उनका इन्तज़ार कर रहा है,
जो अभी नहीं जन्मे हैं।

निर्जीव पृथ्वी का अनगढ़ आरम्भ,
पेड़ और पौधे का मस्तिष्कविहीन स्पन्दन
उन्होंने विचार की पृष्ठभूमि तैयार की—
विचार, जो देवोपम जन्म के लिए
मनुष्यता के ढाँचे को विस्तृत कर रहा है।

ऐसी शक्ति, जिसे मानवीय संकल्प या सामर्थ्य नहीं प्राप्त कर सकी;
ऐसा ज्ञान, जो अनन्तता में विद्यमान है;
ऐसा आनन्द, जो हमारे संघर्ष और दुःख के परे है,
उस जीव की नियति है, जिसे पृथ्वी की बाधा रोक रही है।

ओ निर्जीव पत्थर से बढ़ कर मन के सोपान पर चढ़ने वाले
उस चमत्कारमय शिखर पर पहुँचो, जो अभी जीता नहीं गया है।

CWSA खण्ड २, पृ. ५९५

महत्तर योजना

मैं अब नहीं हूँ प्रभावित जीवन की प्रलोभनीय पुकार से,
उसके सुख और दुःख, उसके आकर्षण, उसके हास्य की झंकार से।
मौन हो गये हैं वंशी के जादूभरे क्षण,
क्षणिक आनन्द-उल्लास, रूप और वर्ण।

मैं सुनूँगा अपनी आत्मा के विस्तार में निःसंग
वह वाणी, जो होती मुखरित जब मर्त्य अधर हो जाते मूकः
मैं, शाश्वतता के सन्नाटे से उत्पन्न
परा वस्तुओं के आश्चर्य का आकांक्षी अन्वेषक।

मनुष्य की आत्मा के भीतर निहित है एक प्रयोजन
सतही वैभव जिसे नहीं कर सकते परिपूर्ण;
क्योंकि जीवन और मन, उनका वाक्युद्ध या स्तवन
एक बृहत्तर विषय-वस्तु का हैं मन्थर मंगलाचरण,

एक अलौकिक योजना का भ्रान्त रेखांकन,
उस परम के महाकाव्य का प्राक्कथन।

CWSA खण्ड २, पृ. ६०६

अतियथार्थवादी विज्ञान का स्वप्न

किसी ने देखा स्वप्न कि एक ग्रन्थि ने किया हैमलेट का सृजन,
मत्स्यकन्या की मधुशाला में पीकर,
अधिकार कर लिया अमरता पर;
अन्तःस्रावों की समिति ने एज़ियन सागर के तट पर
इलियड और ओडिसी की रचना की मिल कर।

एक अवटुक ग्रन्थि ने, ध्यान करते हुए नग्नप्रायः
बोधिवृक्ष के नीचे, शाश्वत ज्योति का किया दर्शन
और, अपने महत् एकान्त से उठ कर,
धर्मचक्र और अष्टदलपथ का किया प्रवचन।

रुग्ण आमाशय द्वारा परिचालित एक मस्तिष्क ने
सारे यूरोप में गर्जना की, विजय पायी, शासन किया और गया हार,
और सन्त हेलेना के दुर्ग से, शायद, स्वर्ग गया सिधार।
अतियथार्थवादी जगत् डोलता रहा इस प्रकार,

जब तक कि एक वैज्ञानिक ने अणुओं से खेल, यह संसार
बुझा दिया इससे पहले कि ईश्वर का निकल सके चीत्कार।

CWSA खण्ड २, पृ. ६१४

वामन नेपोलियन

(हिटलर, अक्तूबर १९३९)

(श्रीअरविन्द द्वारा १९३९ में लिखी इस भविष्यसूचक कविता में हिटलर के बाहरी मुखौटे के पीछे छिपे उसके वास्तविक आसुरिक रूप का वर्णन है और साथ ही है हमारी सभ्यता के ख़तरे की बात जिसे मानवजाति ने उस क्रूर व्यक्ति की वजह से झेला। यहाँ न केवल उसकी आसुरिक सत्ता की कार्य-प्रणाली का कच्चा चिट्ठा है बल्कि उसकी मृत्यु की भी भविष्यवाणी है।)

देखो, 'माया' की स्वैर संकल्पना से
एक हिंस्र चमत्कार का अचानक होता है जन्म,
अविश्वसनीय के साथ वास्तविक हो जाता है एक।
उसकी जादू की छड़ी के सञ्चालन से
तुच्छ प्राप्त कर लेता वस्तुएँ महान्, अधम उत्तम सम्पदाएँ।
यह अदना प्राणी भी लम्बे डग भर पार कर लेगा पृथ्वी
भूतकाल के विराट् महापुरुष के सदृश।
नेपोलियन का मस्तिष्क द्रुतगामी था, साहसी और विशाल था,
उसका हृदय सागर की तरह शान्त भी था और क्षुब्ध भी,
उसके संकल्प की पकड़ और ग्रहणशीलता में गत्यात्मकता थी।
उसकी आँखें एक जगती को अपनी परिधि में रख सकती थीं

और लघु एवं महत् को अधिराट् की तरह देख सकती थीं।
उसने अधिकृत किया था विराट् गहराई और विस्तार
की सञ्चलन-क्रिया को और उसकी आशंसा को दी थी सुसंगति।
उससे बहुत अलग निचली मिट्टी से बना यह आदमी
हर प्रकार के उत्कर्ष से शून्य, मानों खेल में लगा बौना हो,
जिसकी प्रकृति लोहे और मिट्टी के मेल से बनी है,
सीमित दर्शनयुक्त एक क्षुद्र मस्तिष्क
अपनी संकुचित प्रवृत्ति में चालाक और कुशल,
भावुकतापूर्ण अहंकार से ग्रस्त दरिद्र और असंस्कृत,
जिसके हृदय में कभी भी मधुरता, ताज़गी और तरुणाई रही नहीं,
आशा और भयों से सञ्चालित एक अविचारी व्यक्तित्व,
चीख-चिल्लाहटों और अश्रुओं से भरा एक प्रबल स्नायु-रोगी,
हिंसक और क्रूर, राक्षस, बालक और पशु,
कर्कश ज़ुबानवाला एक चीखता हुआ वक्ता,
अनुदार और अनम्य विचार का पैगम्बर,
आज हमारे मानव-अभियान का नेता बना हुआ है;
उसके पराक्रम से निर्मित होगा भविष्य का विजय-तोरण।
आज संसार उसके भक्षण के लिए एक पका फल है।
उसकी छाया लन्दन से कोरिया तक पड़ रही है।
नगर और राष्ट्र उसके गति-पथ में टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं।
आतंक ने लोगों को अपने शिकंजे में कस रखा है :
जगत् की नियति उन फेनभरे होंठों पर ठहरी है।
एक दैत्याकार शक्ति इस लघुकाय आदमी की सहायक है,
यह एक महाबली ताक़त का अनगढ़ और बौना यन्त्र है।
आत्मा के स्वतन्त्र आनन्द और प्रकाश का विद्वेषी,
केवल बल, चातुर्य और दानवी शक्ति से निर्मित,
मानवता को मिट्टी में रौंदने के लिए संकल्पित,
एक लौहशासन के नीचे धरती को एक कर देने वाला,
अपनी क्रूर बृहत् योजना का दुराग्रही।
मानव के मन और संकल्प को एक ही साँचे में खूँदने वाला

भयानक आलम्बन के अन्दर विनम्र और सरल,
जनसमूहों में अपने दानवी नारों की घोषणा करता हुआ;
पर यदि इसकी अन्धरकारपूर्ण राज्यसत्ता स्वीकार कर ली गयी,
इसका आधिपत्य एक ऐसी अशुभ घड़ी ला देगा
जब 'अचेतन' पुनः अपना स्वत्व प्राप्त कर लेगा,
और मनुष्य जो 'प्रकृति' की चेतन शक्ति के रूप में प्रकटा है,
आदि रात्रि की गहनता में डूब जायेगा
उसके उन समस्त रूपों के सदृश जो अतिकाय 'मेमथ' और 'दिनोसार'
जीव-जातियों के विलोपन से पहले ही नष्ट हो गये।
यह दानव के राजकीय वस्त्र की परछाई है
जो सन्त्रस्त भूमण्डल के आर-पार मरीचिका-सी नज़र आ रही है।
विनाशकारी पहाड़ी पर अपने उच्च आवास में
एकाकी वह उस अधिराट् 'आवाज़' को सुनता है,
जो अकस्मात् चुने गये उसके कार्य की अधिनायक है,
दानवी दक्षता से भरी बाघ की कुदान।
उस भयावह 'आगन्तुक' के लिये यह अतिक्षुद्र और मानव सुलभ,
एक ऊर्जा जिसे इसका शरीर प्रतिष्ठित नहीं कर सकता,—
एक उत्पीड़ित माध्यम, कोई उपयुक्त पात्र नहीं,
इसे सोचने, करने, चिल्लाने और भिड़ने के लिए प्रेरित करता है।
इस प्रकार बाध्य हो इसे सब पर विजय प्राप्त करते हुए बढ़ते जाना है,
धमकी देते और शोर मचाते हुए, बर्बर अपराजेय,
तूफ़ान से बुहारे गये अपने मार्ग पर शायद मुलाक़ात करने के लिए
और भी बड़े दैत्य से—या ईश्वर के वज्राघात से।

CWSA खण्ड २, पृ. ६३९-४१

वह सत्ता जिसे हिटलर परात्पर प्रभु समझता था, बिलकुल स्पष्ट रूप में एक असुर थी, वह सत्ता थी जिसे गुह्य विद्या में "मिथ्यात्व का प्रभु" कहते हैं, परन्तु जिसने स्वयं को "राष्ट्रों का प्रभु" घोषित किया था।

श्रीमाँ

भाग-२

'सावित्री' से

('सावित्री'—श्रीअरविन्द का मान्त्रिक महाकाव्य—अपने-आपमें एक जगत् है जिसमें उन्होंने मानवजाति को भविष्य में जो पथ अपनाना है उसे आद्योपान्त दर्शाया है, उसकी विशद व्याख्या की है ताकि मानवता उस पथ पर बढ़ कर अन्ततोगत्वा अपने उस नूतन जीवन को पा सके जो भागवत आधार पर टिका हुआ है। सचमुच इस महाकाव्य को मानवजाति अधिकाधिक तभी समझेगी जब वह उत्तरोत्तर भविष्य में बढ़ती जायेगी। इस भाग में हम 'सावित्री' की कुछ ऐसी पंक्तियाँ दे रहे हैं जिनमें आने वाला भविष्य हमारे सम्मुख उजागर हो रहा है। इन्हें पढ़ना स्वयं को आशा, उत्साह और आनन्द से भरना है ताकि मनुष्य अपनी अपरिहार्य नियति की ओर दुगुने उत्साह और साहस के साथ आगे-ही-आगे कूच करता चले—सं.)

अन्तर में प्रभु विकसित हो रहे होंगे

ऐसे ही एक दिन वे अवगुण्ठित प्रभु अपने सिंहासन पर आरूढ़ हो जायेंगे।
जब अन्धकार गहरा होता है इस धरती के वक्ष में श्वास घुटने लगता है
और मानव के साथ केवल संसारी मन का ही प्रकाश होता है,
तब उस घोर निशा में चोर-समान उसके दबे पाँव की आहट होती है,
उस एकम् की जो अपने ही गेह में अगोचर रहता है।
अब तक अश्रुत मन्द सत्यगिरा तब बोलेगी, यह आत्मा आज्ञापालन करेगी,
मन के अन्तर-कक्ष में एक आत्मबल चुपके से जाग जायेगा,
जीवन के बन्द द्वार एक शोभा और माधुर्य की ओर उद्घाटित हो उठेंगे
और इस प्रतिरोधी संसार पर सुन्दरता शासन करेगी,
इस समस्त प्रकृति को हठात् परम सत्य की ज्योति अधिकृत कर चौंका देगी,
तब चितचोर की यह चोरी हृदय को भावविभोर कर बाँध लेती है
और यह जड़-धरा सहसा दिव्यता की ओर विकसित हो उठती है।
इस जड़तत्त्व में आत्मा की आभा प्रकाशमान् हो जायेगी,
काया से काया प्रज्वलित हो इस जन्म को पावन बना देगी;
सितारों के मंगलगान से यह अन्धरात्रि जाग उठेगी,

ये दिवस तब एक सुखी-प्रसन्न तीर्थ-यात्रा बन जायेंगे,
हमारे संकल्प शाश्वत प्रभु के बल की एक ऊर्जा हो जायेंगे,
और ये विचार एक आध्यात्मिक सूर्य की किरण होंगे।
पर इस चैत्य जन्म को विरले ही देख पायेंगे क्योंकि इसे कोई समझा नहीं है;
अन्तर में प्रभु विकसित हो रहे होंगे
जब कि विज्ञजन विवाद और नींद में डूबे होंगे;
और क्योंकि मानव इसके आगमन का मुहूर्त जान नहीं पायेगा
जब तक यह कार्य सम्पन्न नहीं हो जाता उसे विश्वास नहीं होगा।

सावित्री, पृ. ५५

इस भूतल पर आवरणहीन दिव्यता अभिव्यक्त हो जाये

वह जीवन और मरण और अनेक जीवनों के मध्य नैया खेता चलता है,
वह जागरण और निद्रा में भी यात्रा करता रहता है।
एक आत्मबल उसके साथ है जो माँ की गुह्य पराशक्ति का है
जो उसे उसकी अपनी सृष्टि की नियति से बाँध देता है,
और यह तेजस्वी तीर्थ-यात्री कभी भी विश्राम नहीं ले सकता
और इस रहस्यमयी यात्रा का विराम नहीं हो सकता,
जब तक अविद्या की धुन्ध मानव के प्राण पर से उठ नहीं जाती
और प्रभु की उषाएँ उसकी रात्रि पर अधिकार नहीं कर लेतीं।
जब तक यहाँ प्रकृति देवी का शासन रहेगा, वह भी यहीं रहेगा,
क्योंकि प्रकृति और पुरुष एक हैं यही अटल सत्य है।
जब वह निद्रालीन होता है, वह उसे निज वक्ष पर धारण कर रखता है :
प्रकृति को चाहे कोई भी क्यों न त्याग दे, वह उसे नहीं छोड़ेगा
उसके बिना वह अज्ञात परब्रह्म में विश्राम करने नहीं जायेगा।
यहाँ एक सत्य का उद्‌घाटन करना है, एक कार्य सम्पादित करना है;
माँ की लीला यथार्थ है; पुरुष एक पूर्ण रहस्य की आपूर्ति करता है :
माँ की इस जग-लीला की गहनता में एक योजना है,
इस विराट् निरुद्देश्य दिखते खेल में एक सार्थकता है।
जीवन के प्रथम उषा-काल से अब तक सतत
उसकी यही सार्थक योजना रही है

इस स्थिर संकल्प को उसने अपनी लीला के पीछे आवृत रखा है,
जिससे इस निर्वैयक्तिक शून्य ब्रह्म में एक दिव्य व्यक्ति-चेतना प्रकट हो सके,
परमा सत्य-ज्योति से पार्थिव जड़ता की समाधिस्थ घोर जड़ों को काट सके,
इस अचेतन की अज्ञ गहनताओं में एक मूक चैत्य पुरुष को जगा सके
और एक लुप्त दैवी बल को इसकी कुम्भकर्णी निद्रा से उठा सके
जिससे कालातीत प्रभु के नेत्र इस कालभूमि से बाहर देख सकें
और इस भूतल पर आवरणहीन दिव्यता अभिव्यक्त हो जाये।
इसी सबके लिए उसने अपनी शुभ्र विशुद्ध शाश्वतता त्यागी थी
और इस जीवात्मा पर मांसल नश्वर देह का भार रखा था,
जिससे देवत्व का बीज मनहीन दिक्काल में प्रस्फुटित हो सके।

सावित्री, पृ. ७२-७३

सर्वशक्तिशाली परमेश के प्रज्वलित अग्रगामी
(भावी बाल-वृन्द)

शिव के एक ताण्डव नृत्य ने भूतकाल को छिन्न-भिन्न कर डाला;
लोक टूट-टूट गिर रहे हों ऐसा वहाँ एक विद्युती गर्जन का घोष हुआ;
धरती अग्निज्वालाओं से उजाड़ थी और भयानक मृत्युदेव अट्टहास करता
अपनी क्षुधा द्वारा रचित एक जग को काट डालने को गरज रहा था;
महासर्वनाशी प्रलय के पंखों की गड़गड़ाहट का धमाका था :
शैतान की विकराल युद्ध-चीत्कार मेरे कानों में सुनायी दी थी,
शस्त्रों से सुरक्षित कालरात्रि का अन्तर व्याकुल और आशंका से भयभीत था।
मैंने सर्वशक्तिशाली परमेश के प्रज्वलित अग्रगामियों को
स्वर्ग की उस सीमा पर देखा जो पार्थिव जीवन की ओर मुड़ती है
जन्म के अम्बर-सोपानों पर से वे समूहों में नीचे उतर रहे थे;
दिव्यता के अग्रदूत वे संख्या में अनेक थे,
प्रभात के शुभ्र तारे के पथों से बाहर निकल रहे थे,
मर्त्य-जीवन के इस लघु कक्ष में प्रवेश करने आ रहे थे।
एक युगान्तर के सान्ध्य प्रकाश को मैंने उन्हें पार करते देखा,
एक अद्‌भुत उषा के उन सूर्य-सम चमकते नेत्रों वाले बालवृन्द को,
शान्त-विशाल भाल के उन महान् स्रष्टाओं को,

इस जगत्-संरचना के घोर-स्थूल सीमा-भञ्जकों को
और नियति के साथ उसके संकल्पों से जूझने वाले मल्लयोद्धाओं को
देवों की खदानों में कार्य करने वाले श्रमिकों को,
अनिर्वचनीय प्रभु के सन्देशवाहकों को,
अमरता के दिव्य शिल्पकारों को देखा।
वे इस पतित मानवीय स्तर में उतर आये थे,
फिर भी उनके मुखमण्डल अमर-देवों की शोभा से सुशोभित थे,
फिर भी उनकी वाणियों में प्रभु के विचार गूँज रहे थे,
उनके शरीर आत्म-तेज के सौन्दर्य से आलोकित थे
वे निज अन्तर में मान्त्रिक शब्द, गुह्याग्नि को धारण किये थे
हर्ष के मदमस्त करते पात्र को वहन कर ला रहे थे,
वे समीप आते हुए एक दिव्यतर मानव के नयन थे,
अन्तरात्मा की एक अनजानी ऋचा उच्चारते अधर थे,
महाकाल के प्रांगणों में उनके चरण-चाप गूँजते थे।
वे प्रज्ञा, माधुर्य, सामर्थ्य और आनन्दातिरेक के श्रेष्ठ पण्डित थे,
सूर्यालोकित मार्गों की सुरम्यता के अन्वेषक थे
और दिव्य प्रेम के हँसते आवेगपूर्ण प्रवाहों के तैराक थे
और प्रहर्ष के स्वर्ण-द्वारों के अन्दर नाचते नर्तक थे,
उनका पदक्षेप अवश्य एक दिन इस शोकार्त धरा को रूपान्तरित कर देगा
और विश्व-प्रकृति के आनन की ज्योति का औचित्य सिद्ध कर देगा।
यद्यपि यह दिव्य भाग्य उन्नत परात्परता में विलम्ब करता छिपा है
और यह कार्य, जिस पर हम हृदय की शक्ति गँवा चुके, व्यर्थ ही लगता है,
किन्तु जिसके लिए हमने कष्ट उठाया वह सकल कार्य अवश्य सिद्ध होगा।
ज्यों पशु के पश्चात् आदि मानव धरा पर आया था
वैसे ही मानव की असमर्थ निर्बल नश्वर चाल के पश्चात्
यह उन्नत दिव्य उत्तराधिकारी यहाँ निश्चय ही आयेगा,
उसके निष्फल श्रम, स्वेद और रक्त
एवं अश्रुओं के अर्घ्य के बाद अवश्य आयेगा;
जिसे यह मर्त्य मन अति कठिनाई से सोच पाता है
वह सबका ज्ञान पा जायेगा।

जिस कार्य को करने का यह मानव-हृदय साहस नहीं पाता
वह कर दिखायेगा।
मानवीय काल के परिश्रम का वह उत्तराधिकारी होगा
और देवताओं का भार भी वह निज कन्धों पर उठा लेगा;
स्वर्ग की सम्पूर्ण तेजस्विताएँ धरा के विचारों को भेंटेंगी,
स्वर्ग की सामर्थ्य पार्थिव हृदयों को दृढ़ बना देगी;
तब पृथ्वी की कृतियाँ अतिमानव के शिखरों का स्पर्श करेंगी,
पृथ्वी की दृष्टि अनन्तता तक विस्तृत हो जायेगी।

सावित्री, पृ. ३४३-४४

तुम्हारे हृदय-चक्रों में देवांश विकसित होता रहेगा

हे बन्दी-तेजस्वी बल, भाग्य-नियन्त्रित पृथ्वी पर जन्मी जाति,
एक अनन्त विश्व में लघु यात्राओं के साहसी वीरो,
और एक वामन मानवता के बन्दियो,
कब तक तुम इस मन के गोलाकार पथों पर चक्कर लगाते रहोगे
अपनी क्षुद्र अहम् सत्ता और नगण्य वस्तुओं से घिरे रहोगे?
क्योंकि एक रूपान्तरहीन क्षुद्रता के लिए तुम नहीं बने,
एक निष्फल आवर्तन-हेतु तुम नहीं रचे गये;
अमर-अविनाशी के द्रव्य से तुम्हारा सर्जन हुआ है;
तुम्हारे कर्म ही अति तीव्रता से तुम्हारी अभिव्यक्ति के चरण बन सकते हैं,
तुम्हारा जीवन विकसित होती देव-सत्ताओं का एक परिवर्तनशील साँचा है।
एक दिव्य द्रष्टा, एक सामर्थ्यपूर्ण सर्जनहार, तुम्हारे अन्तर में है,
वह अमल श्रीमहिमा तुम्हारे दिवसों की संरक्षिका ध्यानासीन है,
सर्वशक्तिशाली शक्तियाँ इस विश्व-प्रकृति के कोशों में क़ैद हैं।
एक महत्तर नियति तुम्हारे सम्मुख प्रतीक्षा में खड़ी है:
यह क्षणिक पार्थिव प्राणी यदि संकल्प कर ले
तो निज कर्मों को एक परात्पर की योजना से जोड़ सकता है।
वह जो इस समय अज्ञानी नेत्रों से इस जगत् को घूरता है
जो घोर अचित् की रात्रि से अभी कुछ समय पहले उठा है,
जो अभी केवल छाया को देखता है अमर सत्य नहीं देख पाता,

वह अब निज नयन-कोटरों में एक अमरदेव की चितवन भर सकता है।
तथापि तुम्हारे हृदय-चक्रों में देवांश विकसित होता रहेगा,
तुम आत्मा के परिवेश में एक दिन अवश्य जागोगे,
और नश्वर मन की गिरती दीवारों का अनुभव पाओगे,
जीवन के हृदय को शान्त करने वाले सन्देश को सुनोगे
और इस विश्व-प्रकृति के अन्तर में सूर्य-सम दृष्टि से अवलोकोगे,
और चिरन्तन के द्वार पर पहुँच अपने विजयी शंखों से नाद करोगे।
धरा के उच्च रूपान्तरकारी लेखको, तुम्हें यह अधिकार दिया गया है
इस आत्मसत्ता की इन आपात्कारी दिशाओं को पार करने का
और सर्वशक्तिमयी भगवती माता को स्पर्श कर पूरी तरह जगाने का,
और सर्वशक्तिमय प्रभु से इस हाड़मांस की देह में भेंटने का
और इन लक्ष-लक्ष देह में बसे परमैकम् को जीवन में उतारने का।
यह तेरे विचरण की धरती एक सीमा है जिसने स्वर्ग को विलग कर दिया है;
यह तेरे जीवन-यापन की विधि उस ज्योति को जो तू स्वयं है, ढक लेती है।

एक महान् क़दम ही सकल को मुक्ति दिला देगा, यह जानती है
और, दुःख भोगती, वह निज पुत्रों में उस महत्ता को खोजती है।
किन्तु मानव हृदयों में अभीप्सा की आरोही शिखा अभी मद्धिम है
वह अगोचर श्रीशोभा अपूजित वहाँ आसीन है;
नर अभी नारायण को एक सीमित आकार में ही देखता है
या एक महात्मा पर श्रद्धा करता है, एक दिव्य नाम का श्रवण करता है।
वह क्षुद्र लाभों के लिए अविद्या की महाशक्तियों की ओर मुड़ता है
अथवा निज पूजा के दीपक को एक आसुरी बल के लिए जलाता है।
वह उस अविद्या से प्रेम करता है जो उसकी पीड़ा की जन्मदात्री है।
उसके प्रतापी बल एक मायाजाल से बाधित हैं;
अपने विचारों की मार्गदर्शिका अन्तर की दिव्यवाचा को उसने खो दिया है,
और उस दिव्य वाणी के त्रिगुणी आसन को ढक कर
एक सत्य का आभास देती प्रतिमा उस भव्य मन्दिर में स्थापित कर दी है।

सावित्री, पृ. ३७०-७१

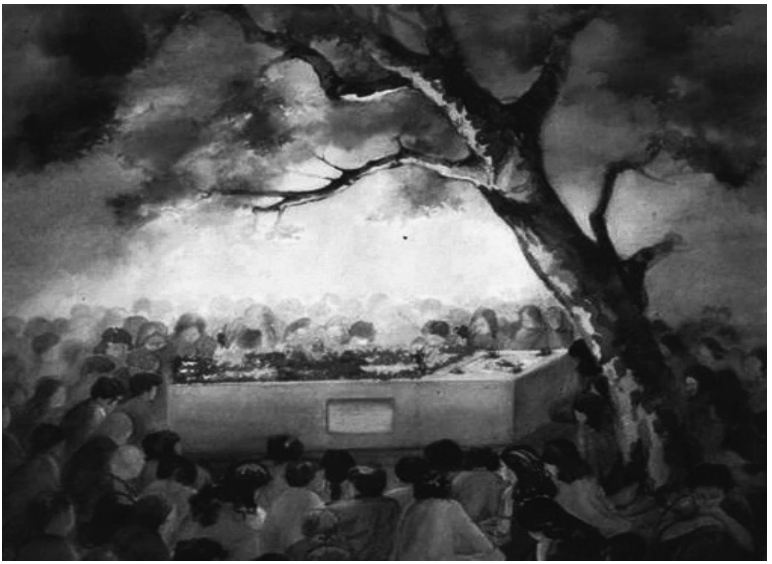

मृत्युदेवता की प्रचण्ड घड़ी में एक बीज रोपा जायेगा,
स्वर्ग की एक शाखा इस मानवीय धरती पर प्रत्यारोपित होगी;
विश्व-प्रकृति अपने मर्त्य-चरण को कूद कर उलाँघ जायेगी;
एक दृढ़ अपरिवर्तित संकल्प द्वारा नियति बदल दी जायेगी।

सावित्री, पृ. ३४६

अपरिचित शक्तियाँ उदित होंगी और धरा प्रभु का धाम बनेगी

यदि सृष्टि इस अर्थहीन असत् शून्य में उदित हो सकती है,
यदि एक निराकारी चित्-शक्ति से भौतिक तत्त्व उत्पन्न हो सका,
यदि अचेत वृक्ष में प्राण आरोहण कर सका,
इसका हरित-हर्ष पन्नगी पल्लवों में प्रस्फुटित हो गया
और इसका लावण्यपूर्ण हास्य पुष्प बन खिल उठा,
यदि अचित्-ऊतक, तंत्रियों और कोषाणु में बोध जाग सका,
और संकल्प इस जड़-बुद्धि के धूसर-रंगी तत्त्व को जान सका,
और चैत्य पुरुष इस मांसलता के मध्य अपनी गुह्यता से बाहर झाँक सका,
तब वह अनामी पराज्योति मानव को झपट क्यों न धर लेगी,
और अपरा प्रकृति के गर्भ में सोयी अपरिचित शक्तियाँ क्यों न उदित होंगी?
अब भी यहाँ द्युतिमान् परम सत्य के संकेत तारों-समान
अविद्या के चन्द्र-प्रकाशित मानस के वैभव पर उदित हो उठते हैं;
अब भी यहाँ अविनाशी दिव्य प्रेमी का स्पर्श हम अनुभव करते हैं:
यदि हमारे अन्तर का द्वार तनिक-सा खुला रह जाये,
तो उस चितचोर प्रभु का प्रवेश कौन रोक सकता है
और हमारी सोयी चैत्यात्मा को चूमने में बाधा दे सकता है?
परमेश्वर तो अब भी हमारे समीप हैं, यहाँ परम सत्य का सान्निध्य भी है:
क्योंकि एक निरीश्वरवादी की काली काया उसको नहीं पहचानती है,
आत्मद्रष्टा ऋषि भी पराज्योति का निषेध कर, निज आत्मा को नकार देगा?

हे सूर्य-दिव्यवाचा, तू अवश्य पार्थिव जीव को पराप्रकाश तक उठा देगी
और प्रभु को मानव जीवनों में उतार लायेगी;
यह धरा मेरा कर्मक्षेत्र और मेरा धाम बनेगी,
प्राण में एक दिव्यता का बीज रोपने-हित मेरा उपवन होगी।
जब मानव जीवन में तेरा समस्त कार्य सम्पादित होगा
तब पृथ्वी का मानस प्रकाश का एक भवन होगा,
धरा का यह जीवन स्वर्ग की ओर विकसित होता एक वृक्ष होगा,
धरा का यह शरीर प्रभु का एक मन्दिर होगा।
इस मर्त्य-नश्वर अज्ञान से जाग कर मानव

परात्पर प्रभु की किरण से ज्योतित हो उठेंगे
और उनके विचारों में मेरे प्रकाश में उन्नत होता गौरव झलकेगा
और वे निज अन्तरों में मेरी प्रेम माधुरी का अनुभव पायेंगे
और उनके कर्म मेरी दिव्य ऊर्जा की अद्‌भुत प्रेरणा से सञ्चालित होंगे।
उनके दिवसों की सार्थकता में मेरा संकल्प कार्य करेगा;
वे मेरे लिए जियेंगे, मेरे द्वारा, मुझमें वे जीवन धारण करेंगे।

सावित्री, पृ. ६४८-४९, ६९९

विभाजन का अन्त हो गया

वहाँ ब्रह्माण्डीय दिव्य संकल्प की उस सुषुप्ति में
उसने विश्व-प्रकृति के रूपान्तर की गुह्य कुञ्जी देखी।
एक ज्योति योगी के साथ थी, एक अलक्ष्य हाथ
उस दोष और पीड़ा के ऊपर धरा सहला रहा था
जब तक यह एक कम्पित आह्लाद में बदल नहीं गया,
एक बाहु आलिंगन का मधुर-आघात न बन गया।
उसने घनघोर रात्रि में चिरन्तन प्रभु का छायादार घूँघट देखा,
जीवन-भवन का एक तहख़ाना मृत्यु है, वह जान गया,
विनाश में सृष्टि की उग्रवेगी शीघ्रता का इसने अनुभव पाया,
एक स्वर्गिक लाभ-प्राप्ति का दाम हानि से चुकाया जाता है
और नरक को स्वर्ग के द्वारों की ओर ले जाता एक संक्षिप्त मार्ग-सम जाना।
तब मोहमाया के गुह्य कारख़ाने में
और महा अचित् के जादुई छापेख़ाने में
उस आद्या घोर रात्रि की पुस्तकों के बाहरी ढाँचे फाड़ दिये गये थे
और अविद्या की रूढ़ि धारणाओं को छिन्न-भिन्न कर दिया था।
प्राणशक्ति वहाँ एक गहरी आध्यात्मिक श्वास लेती,
संजीवनी, प्राण-प्रकृति ने अपनी कठोर नियमावली मिटा दी
और उस बन्दी आत्मपुरुष को अनुबन्धित अनुच्छेदों से मुक्त कर दिया,
वहाँ मिथ्यात्व ने अनादि सत्य को अपना पीड़ित रूप लौटा दिया था।
प्राण-पीड़ा के विधान के सभी पहाड़े रद्द कर मिटा दिये गये,
और उनके स्थान पर दीप्तिमान अक्षर उभर आये थे।

चतुर शिल्पी देव-लिपिक की अदृश्य अँगुलि ने
योगी के तात्कालिक अन्तर्दर्शन को सुलेख में लिख सजा दिया;
पृथ्वी के सब आकार अब उसके दिव्य प्रमाण-पत्र बना दिये गये,
उस प्रज्ञा को प्रकट कर दिया जिसे मन अभिव्यक्त नहीं कर पाया था
उस जगत् के वाणीहीन वक्षस्थल से घोर अचित् को निकाल बाहर किया;
विवेचना के आदि-विचार की अटल योजनाओं का रूपान्तर हो गया।
निर्जीव पदार्थों में चेतना जाग्रत् कर, उसने काले परमाणु और मूक स्थूल
द्रव्य पर, अविनाशी प्रभु की ज्योतिर्मयी हीरक लिपि आरोपित कर दी,
पतित वस्तुओं के मूढ़ अन्तर पर अंकित कर दिया
मुक्त नित्यता के एक स्तुति-गायन को
और उस प्रभु-नाम को, जो चिरन्तनता का मूलाधार है,
और जाग्रत् आह्लादित कोषाणुओं पर उकेर दिया
अनिर्वचनीय की भावना से पूर्ण लिपियों में
उन प्रेम के गीतों को जो युगों से प्रतीक्षा में मूक थे,
और आत्मरति के शास्त्र के गुह्य आदि-ग्रन्थ को,
और परा-चैत्याग्नि के मूल सन्देश को अंकित कर दिया।
तब इस पार्थिव आकार में प्राणशक्ति विशुद्ध रूप में स्पन्दित हो उठी;
वह नारकीयता की चमक मिट गयी और किसी का वध न कर पायी।
नरक निज विकराल विषम बनावट के मध्य से टूट बिखर गया
जैसे कि एक मायावी भवन हठात् मिट गया,
अन्ध-रात्रि फट गयी और एक स्वप्न की खाड़ी-सम लुप्त हो गयी।
उसकी सत्ता में खोद, बनाये गये आकाश-सम रिक्त अन्तराल में
जिसे प्रभु की अनुपस्थिति में कालरात्रि ने भर रखा था,
अब वहाँ एक विस्तृत आत्मीय आनन्दमयी चिर उषा का अवतरण हो गया;
युग के विदीर्ण हृदय द्वारा बनाये सब पदार्थ सुस्वस्थ हो उठे
विश्व-प्रकृति के अन्तर में अब क्लेश और वास नहीं कर पाया :
विभाजन का अन्त हो गया, क्योंकि ईश्वर वहाँ स्वयं साक्षात् थे।
आत्मा ने निज चैत्य-रश्मि द्वारा देह को सचेत कर आलोक से भर दिया,
अब जड़तत्त्व और आत्मतत्त्व घुल-मिल कर एक थे।

सावित्री, पृ. २३१-३२

हे मानससत्ता, तू शाश्वत शान्ति से पूर्ण हो विकास कर;
हे आदि शब्द, परम अमर स्तुति का गान कर :
स्वर्ण मीनार का निर्माण हो गया है, ज्योति-शिशु जन्म ले चुका है।

सावित्री, पृ. ७०२

मानव और अतिमानव

किन्तु सर्वप्रथम विशाल नित्य-सत्य को पृथ्वी पर निज चरण धरने होंगे
और मानव को सतत शाश्वत ज्योति की अभीप्सा कर
अपने सब अंगों में परमात्मा का स्पर्शानुभव पाना होगा
और अपने समस्त जीवन द्वारा
एक अन्तर आत्मशक्ति का अनुसरण करना होगा।
यह सब यहाँ होगा ही; क्योंकि एक नवजीवन को आना है,
परा-चेतना के सत्य को एक शरीर धारण करना है,
परा-प्रकृति की सम्भावनाओं का एक नैसर्गिक सहज क्षेत्र बनना है:
वह पृथ्वी की निश्चेतन भूमि को परम-सत्य का उपनिवेश बना देगा,
इस अविद्या के पट को भी एक पारभासी परिधान बना देगा
जिसके माध्यम से चिर-सत्य के द्युतिमान अंग चमकेंगे
और यह नित्य-सत्य विश्व-प्रकृति के ललाट पर एक सूर्य बन दमकेगा
और यह नित्य-सत्य जड़-प्रकृति के पगों को मार्ग दिखायेगा
और यह सत्य उसकी पातालीय गहनताओं से निकल उदित हो उठेगा।
जब अतिमानव विश्व-प्रकृति का नृपति बन जन्मेगा
उसकी उपस्थिति से इस भौतिक संसार का रूपान्तर हो जायेगा:
वह सत्य की ज्वाला को भौतिक प्रकृति की रात्रि में प्रज्वलित करेगा,
वह चिर सत्य का महत्तर विधान पृथ्वी पर अध्यारोपित करेगा;
यह मनुज भी तब परमात्मा के आवाहन की ओर मुड़ जायेगा।
वह अपनी गुप्त सम्भावना के प्रति जाग्रत् हो,
उसके हृदय में जो कुछ सुप्त है उसके प्रति सचेतन हो जायेगा,
और जब पृथ्वी सृष्ट हुई थी और परमेश्वर ने इस अज्ञानी संसार को
निज धाम बनाया था, उस प्रकृति देवी के सकल अर्थ के प्रति सचेतन हो,
वह परम सत्य और परमेश्वर एवं परमानन्द-हित अभीप्सा करेगा।
एक दिव्यतर विधान का भाष्यकार
और एक सर्वोत्तम योजना का यन्त्र बन,
एक महत्तर वर्ग इस मानव के उत्थान-हित नीचे झुक आयेगा।
मानव तब निज पराकाष्ठाओं को पाने की अभीप्सा करेगा।
यह उच्च सत्य एक निम्न अधोसत्य को जगायेगा,

यह मूक अचेत धरा तब एक सचेतन शक्ति बन जायेगी।
आत्म-चेतना की उच्चताएँ औ' भौतिक प्रकृति की मूलाधार गहनताएँ
अपने पृथक् सत्य के रहस्य से आकर्षित हो समीप आ जायेंगी
और एक-दूसरे को एक देवता-सम पहचान लेंगी।
भौतिक तत्त्वों के नेत्रों से परमात्म तत्त्व बाहर देखेगा
और जड़तत्त्व में परमात्मा का मुख दिखायी देगा।
तब मानव और अतिमानव मिल एक हो जायेंगे
और सम्पूर्ण धरती का जीवन एक ही आत्मश्वास भरेगा।
सामान्य बहुजन तक को अन्तर्नाद सुनायी देगा
और वह अन्तर्मुखी हो परमतत्त्व से सम्भाषण करेगा
और श्रेष्ठ आध्यात्मिक विधानानुसार रहने का प्रयास करेगा:
यह भूमि तब उदात्त अन्तर्वेगों से आन्दोलित हो उठेगी,
मानवता अपनी गहनतम आत्म-चेतना में जाग जायेगी,
प्रकृति तब अपने गोपित देवत्व को पहचान लेगी।
फिर भी अनेक होंगे जो कुछ उत्तर देने का प्रयास करेंगे
और दिव्यता के भव्य आवेग को वहन करेंगे
और अदृश्य द्वारों पर उसकी उत्साही दस्तक सुनेंगे।
एक अलौकिक आवेश मानव-जीवनों में उथल-पुथल मचा देगा,
उस अवर्णनीय प्रकाशपुञ्ज में उनका मन भी हिस्सा लेगा,
उनके प्राण उस प्रहर्ष और ज्वाला के तेज का अनुभव पायेंगे।
पृथ्वी के शरीर एक आत्मा के प्रति सचेत हो उठेंगे;
मृत्यु के बन्धुआ दास अपने बन्धनों को खोल डालेंगे,
और तुच्छ मानव आध्यात्मिक सत्ताओं में विकसित हो जायेंगे
और इस मूक दिव्यता को जाग्रत् होते देखेंगे।
स्वभाव के शिखरों पर अन्तर्प्रेरणा की किरणें स्पर्श करेंगी,
स्वभाव की गहराइयों को एक आत्मदर्शन हिला देगा;
आत्म-सत्य उनके जीवनों का नेता होगा
आत्म-सत्य उनके विचार औ' वाचा तथा कर्म का सञ्चालन करेगा,
वे स्वयं उन्नत हो नभ को समीपतर अनुभव करेंगे,
अपने को देवों की अपेक्षा अल्प मात्र ही लघु अनुभव करेंगे।

क्योंकि तब विद्या द्युतिमान धाराओं में नीचे प्रवाहित कर दी जायेगी
और अन्धतम मन भी नवप्राण का स्पन्दन पायेगा
और परम आदर्श की ज्वाला से प्रज्वलित हो जल उठेगा
और मर्त्य अज्ञान से बच निकलने को नूतन पथ पर मुड़ जायेगा।

सावित्री, पृ. ७०८-७१०

दिव्य जीवन

अविद्या की सीमा-चौकियाँ सब पीछे छूट जायेंगी,
और अधिकाधिक अन्तरात्माएँ प्रकाश में प्रवेश पायेंगी,
मानस-सत्ताएँ प्रज्वलित, प्रेरित हो, गुह्य अन्तर्होता को सुनेंगी
और मानव जीवन हठात् एक अन्तर्दीप्ति से प्रकाशित हो जायेंगे,
और प्राण दिव्यानन्द के अनुरागी भक्त बन जायेंगे
और मानव के सब संकल्प भागवत संकल्प से एकस्वर में जुड़ जायेंगे,
ये पृथक् व्यक्तित्व-सम विश्वात्मा से एकता की अनुभूति पायेंगे,
ये इन्द्रियाँ स्वर्गिक बोध से सक्षम हो विकसित होंगी,
देह की मांसपेशियाँ और नाड़ियाँ एक विचित्र अलौकिक मोद से मुदित
यह मानव नश्वर काया अमरता के योग्य बनेगी।
उसके ऊतकों और रोम-कूपों में एक दिव्य ऊर्जा प्रवाहित होगी
और श्वास औ' वाचा तथा कर्म-सञ्चालन को अधिकृत कर
और समस्त संकल्प-विचारों को एक सूर्यालोक-सम चमका देगी
और प्रत्येक भावना को एक स्वर्गिक भाव से स्पन्दित कर देगी।
बहुधा एक ज्योतिर्मय अन्तर-उषा उदित हो
सोये अचेत मन के कक्षों को आलोकित कर देगी,
प्रत्येक अंग हठात् एक हर्ष की लहर से लहरा उठेगा
और समस्त प्रकृति एक महत्तर परम सान्निध्य से भर जायेगी।
इस प्रकार यह पृथ्वी दिव्यता की ओर उद्घाटित होगी
और साधारण स्वभावों में भी विशाल उत्थान की अनुभूति होगी,
साधारण कर्म परमात्मा की रश्मि से प्रकाशित होंगे
और साधारण वस्तुओं में देवता से भेंट करेंगे।
प्रकृति देवी गुह्य प्रभु को व्यक्त करने को जीवन धरेगी,

आत्म चित्-शक्ति इस मानव लीला का भार उठा लेगी,
यह पार्थिव जीवन तब दिव्य जीवन बन उठेगा।

... एक शक्ति नीचे झुक आयी, एक प्रसन्नता ने अपना घर खोज लिया।
विस्तृत पृथ्वी के ऊपर अनन्त परमानन्द ध्यानमग्न था।

सावित्री, पृ. ७१०, १२

लौह युग का अन्त आ गया है

अतीत विनष्ट हो जायेगा; गुज़र जायेगा,
उखड़ जायेगा, विलीन और ग़ायब हो जायेगा;
वे सभी लौह घेरे जो मनुष्य को जकड़े रहते हैं औ'
मानवीय प्रशस्त विस्तार अन्ततः समाप्त हो जायेंगे...

लौह युग का अन्त आ गया है, अब बाक़ी है सिर्फ़
मरणासन्न अतीत का अन्तिम भयंकर दौर
और जब वह भी गुज़र जायेगा, झकझोर देगा राष्ट्रों को
धुल जायेंगी सभी दुर्भावनाएँ, जाग उठेगी पृथिवी स्वच्छ-प्रसन्न।

सतत प्रगति करेगा मानव; क्योंकि लौह युग
तैयार करता है स्वर्ण-युग को। जिसे कहते हैं हम पाप,
वे हैं उसके वे अन्तरस्थ अवशेष जिन्हें उसने त्याग दिया है;
क्योंकि अब 'कर्णधार' है उसकी तीर्थयात्रा का खेवनहार।

वह कलह, दुःख औ' दुर्भावना को देता है त्याग,
जो उससे चिपकते और पलट-पलट कर लौटते थे, क्योंकि
अब दुःख की आग में धधकती हैं ज्वालाएँ
अधिक माधुर्य की, अधिक बल प्राप्त करने की।

CWSA खण्ड २, पृ. २४३-४४

कवि और लेखकों को सलाहें

बढ़ा-चढ़ा कर लिखने से बचो। तुम्हारे सभी वाक्य किसी ऐसी चीज़ का वहन करें जो कहने-लायक़ हो। जो कहना है उसे स्पष्ट यथार्थता के साथ कहो, न तो कहने में त्रुटि रह जाये न बात का बतंगड़ बने। विचार या भाषा न तो पिछड़ जाएँ और न पैर घसीटें। तुम्हारी भाषा भाव से अधिक समृद्ध न हो। किसी ऐसी वाक्-चातुरी में न पड़ो जिसके पीछे कोई जीता-जागता सत्य न हो।

*

... अगर तुम कष्ट उठाना चाहो तो गणितज्ञ की खोज के आनन्द, वैयाकरण के व्याकरण की गुत्थियाँ सुलझाने के या इंजीनियर के मकान या पुल की योजना बनाने के आनन्द के बारे में कविता लिख सकते हो जैसे ब्राउनिंग ने वैयाकरण की शवयात्रा पर लिखी है। ये विषय आसानी से कविता में प्रवेश नहीं पाते क्योंकि उनका विषय बौद्धिक और अमूर्त है जब कि कविता के विषय और उसकी भाषा को भावात्मक और अन्तर्भासात्मक होना चाहिये। इसका कारण यह नहीं है कि ये विषय जनसाधारण के लिए नहीं, अमुक लोगों के लिए ही रोचक होते हैं। एक अच्छा-ख़ासा भोज अमुक लोगों को नहीं, सर्वसाधारण जनता को रुचिकर लगता है परन्तु पकाने की या बानगियों की महानता, जीभ और पेट के आनन्द पर गीतिकाव्य या महाकाव्य लिखना ज़रा कठिन होगा। इसके विपरीत, आध्यात्मिक विषय बड़ी अच्छी कविता में आ जाते हैं क्योंकि उन्हें उच्चतर भाव और प्रदीप्त अन्तर्भास की भाषा में व्यक्त किया जा सकता है। कविता के गुणों के स्तर के बारे में यह प्रश्न असंगत है कि कितने लोग उसका रस ले सकेंगे। 'टिमोन ऑफ़ एथेन्स' और 'पैरेडाइज़ रीगेन्ड' की अपेक्षा मैकाले के 'ले' और किपलिंग के 'बैलेड' को बहुत अधिक लोगों ने पसन्द किया है परन्तु इसके आधार पर उनका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। कविता या कला का मूल्य उसे मिली प्रशंसा या प्रतिक्रियाओं से नहीं आँका जा सकता।

*

समकालीन मत इस बात का कोई निर्णय नहीं कर सकता कि अमुक

कविता चिरंजीवी होगी या नहीं। प्रकृति की विभिन्न पद्धतियों और प्रक्रियाओं को किसी मानसिक सिद्धान्त के संकुचित चौखटे में बिठाने की कोशिश करना एक बड़ी भूल है। शेक्सपियर में बहुत अधिक प्राणिक शक्ति थी जिसके कारण वह बहुत बड़ी संख्या के लोगों में लोकप्रिय हो गया परन्तु यह लोकप्रियता काव्य के लिए नहीं, नाटकीय स्पष्टता और शक्ति के कारण थी। उसके काव्य का प्रशस्ति-गान तो दो सौ वर्ष बाद जर्मन रोमानियों ने शुरू किया था। इससे पहले उसके प्रशंसकों की संख्या बहुत कम थी। अन्य कई बड़े कवियों ने शुरू में बहुत ही कम मान्यता पायी थी। कुछ हैं जिन्हें अपने जीवन-काल में तो बहुत लोकप्रियता मिली पर बाद में बहुत नीचे उतर गये। ज़रूरी यह है कि कवि को 'स्वान्तः सुखाय' लिखने का अधिकार हो यानी, जो आत्मा उसे गति दे रही है उसकी प्रेरणा के अनुसार लिखने का अधिकार हो, यह नहीं कि उसे जन-साधारण को सन्तुष्ट करने के लिए, उनके स्तर पर उतर आने के लिए बाधित किया जाये अथवा समकालीन मापदण्ड के अनुसार अथवा आलोचकों की सनक के अनुसार लिखने के लिए मजबूर किया जाये क्योंकि इसका अर्थ होगा, कविता का अन्त या उसका क्षय। और उस क्षय में ही उसका अवसान हो जायेगा। कवि को अपने पंखों का उपयोग करने का अधिकार होना चाहिये भले वे उसे उड़ा कर उन शिखरों तक ले जायें जहाँ तक साधारण पाठकों या आलोचकों की पहुँच नहीं है... काव्य-शक्ति को पहली मान्यता उन इने-गिने लोगों से मिलेगी जो उसे पहचान सकते हैं, जो पहली ही दृष्टि में अच्छी कविता को देख लेते हैं, जो उस जगत् में प्रवेश कर सकते हैं। उसके बाद उन लोगों से मान्यता मिलेगी जो अच्छी कविता की ओर संकेत करने से उसे पहचान लेते हैं और अन्त में उन लोगों की सराहना मिलेगी जो सहज वृत्ति के सहारे नहीं बल्कि धीमी शिक्षा के कारण कविता को पकड़ पाते हैं। एक मान्यता रही है कि समकालीन मत का कोई मूल्य नहीं होता। अच्छी कविता या अच्छा साहित्य वह है जो कवि के चले जाने पर भी बना रहे।

रही बात उन छोटे या बड़े कवियों की जो अपने समय में ही बहुत लोकप्रिय हो जाते हैं। उनके अन्दर कोई ऐसा तत्त्व होता है जो तुरन्त अपने काल के मन को मोह लेता है इसलिए वे ऐसी चीज़ें, ऐसी भाषा में, ऐसे छन्द में कहते हैं जो उस समय के मानस के साथ मेल खा सके, जिसे

समकालीन जनता समझ और सराह सके। ऐसी चीज़ें एक समय बहुत लोकप्रिय हो जाती हैं परन्तु यदि उनमें उच्चतम या सर्वोत्तम का कोई अंश न हो तो वे अगली पीढ़ियों के आते-आते खो जाती हैं। लेकिन अगर उस काव्य के अन्दर कोई उच्चतर तत्त्व हो तो समय गुज़रने के साथ-साथ उसका मूल्य भी बढ़ता जाता है।

(श्रीअरविन्द के 'लेटर्स ऑन पोएट्री' से उद्धृत)

कवि और कविता के बारे में

(श्रीअरविन्द के पत्रों से उद्धृत कुछ रोचक बातें)

जब कोई सुनता है कि आपको लेखन आदि के लिए अत्यधिक आयास करना पड़ा तो उसे आश्चर्य होता है कि क्या वाल्मीकि की काव्यशक्ति के एकाएक उन्मीलन की कथा सच्ची है—क्या ऐसा चमत्कार सचमुच में सम्भव है।

आयास किस चीज़ के लिए? कुछ वस्तुओं के लिए मुझे आयास करना पड़ा—अन्य वस्तुएँ निर्वाण या चित्रकला के मूल्यांकन की शक्ति की तरह क्षण-भर में या दो-तीन दिनों में ही प्राप्त हो गयीं। मेरे अन्दर का "प्रसुप्त" दार्शनिक एक ही झटके में (जब मैं कलकत्ते में था) प्रकट होने में सफल नहीं हुआ—कुछ वर्षों के सेने (?) के बाद ज्यों ही मैंने Arya (आर्य) के लिए लिखना आरम्भ किया, यह ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ा। इन वस्तुओं के लिए कोई एक ही अन्तिम नियम नहीं। वाल्मीकि की कवित्वशक्ति 'शैम्पेन' Champagne शराब की बोतल की तरह भले ही एकाएक खुल पड़ी हो, पर उसका यह अर्थ नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति की वैसे ही खुलेगी।

१.४.१९३५

अन्तःप्रेरणा सदा ही अत्यन्त अनिश्चित वस्तु होती है; वह जब चाहती है आती है, अपना काम पूरा करने से पहले ही यकायक बन्द हो जाती है,

बुलाये जाने पर उतरने से इनकार करती है। सम्भवतः सभी कलाकारों की, पर निश्चय ही कवियों की यह सुप्रसिद्ध मनोवेदना है। कुछ ऐसे कवि होते हैं जो उसे जब चाहें साधिकार प्राप्त कर सकते हैं, मेरी समझ में ऐसे वे होते हैं जो पूर्णता के लिए सतर्क होने की अपेक्षा कहीं अधिक प्रचुर काव्यशक्ति से भरपूर होते हैं। कुछ दूसरे ऐसे होते हैं जो जब कभी काग़ज़ पर क़लम रखते हैं, उसे आने के लिए विवश कर देते हैं, पर उनमें अन्तःप्रेरणा या तो उच्चकोटि की नहीं होती या अपने स्तरों में सर्वथा असमान होती है। फिर कुछ ऐसे भी होते हैं जो सदा एक ही समय लिखने का अभ्यास डाल कर उसमें उसी समय आने की आदत डालने का यत्न करते हैं। कहा जाता है कि *वरजिल* जो हर प्रातःकाल नौ पंक्तियाँ पहले तो लिखते थे, फिर उन्हें पूर्ण बनाते थे, और *मिल्टन* जो प्रतिदिन अपने महाकाव्य की पचास पंक्तियाँ लिखा करते थे, अपनी अन्तःप्रेरणा को नियमित रूप देने में सफल हुए। मैं समझता हूँ यह वही सिद्धान्त है जिससे प्रेरित होकर भारत में गुरु अपने शिष्य को प्रतिदिन एक ही निश्चित समय पर ध्यान करने का आदेश देते हैं। निःसन्देह यह कुछ अंश में सफल होता है, कुछ लोगों के लिए तो पूर्ण रूप से भी, पर हर एक के लिए नहीं। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, जब अन्तःप्रेरणा महावेग के साथ या धारा के रूप में नहीं आती थी,—क्योंकि यदि ऐसे आये, तब तो कुछ कठिनाई ही नहीं,—मैं केवल एक ही मार्ग अपनाता था, एक प्रकार की सेने की क्रिया होने देता था जिसमें रचनीय वस्तु का विशाल रूप अपने-आपको मन पर प्रक्षिप्त कर देता था और तब मैं शुभ्र ताप के प्रकट होने की प्रतीक्षा करता था जिसमें पूरे-का-पूरा प्रतिलेखन द्रुत वेग से हो सके। पर मेरे विचार में प्रत्येक कवि का कार्य करने का अपना तरीक़ा होता है और वह अन्तःप्रेरणा की अनिश्चित अवस्थाओं में से अपना रास्ता आप निकाल लेता है।

*

मैं स्वयं कई बार कुछ समय के लिए लिखना बन्द कर देता रहा हूँ क्योंकि मैं चेतना के उच्चतर स्तर से अभिव्यक्त वस्तु को छोड़ और कुछ भी लिखना नहीं चाहता था, पर ऐसा करने के लिए तुम्हें अपनी प्रभु-प्रदत्त काव्य-प्रतिभा के विषय में दृढ़ विश्वास होना चाहिये कि वह अति दीर्घकाल

तक अप्रयोग से ज़ंग नहीं खा जायेगी।

४.९.१९३१

*

अपनी नीरव चेतना के द्वारा आपके लिए रंचमात्र एकाग्रता करते ही ऊँची-से-ऊँची भूमिकाओं से अन्तःप्रेरणा का आहरण कर लेना सम्भव होना चाहिये।

उच्चतम भूमिकाएँ इतनी सुनम्य नहीं जितनी तुम उन्हें समझ रहे हो। यदि वे ऐसी होतीं तो अतिमानस को भौतिक चेतना में उतार कर व्यवस्थित करना इतना कठिन क्यों होता? क्या ही अलमस्त, रंग-बिरंगा जाल बुनने वाले नादान लोग हो तुम सब! तुम नीरवता, चेतना, अधिमानस, अतिमानस आदि के बारे में ऐसे बातें करते हो मानों वे बहुत-से बिजली के बटन हों जिन्हें बस तुम्हें दबाना होता है और लो वे चीज़ें हाज़िर हो जाती हैं। एक दिन शायद ऐसा भी हो सके पर इस बीच तो मुझे बिजली की सभी सम्भवनीय अवस्थाओं की क्रिया के विषय में सब कुछ—सभी नियमों, सम्भावनाओं, संकटों आदि को खोजना ही है, सम्बन्ध और सञ्चार की पद्धतियों की रचना करनी है, दूर-दूर तक तार लगाने की सारी प्रणाली बनानी है, यह जानने का यत्न करना है कि उस प्रणाली को अनाड़ी के लिए भी सुबोध्य एवं व्यवहार्य कैसे बनाया जा सकता है और यह सब-का-सब एक ही जीवन की अवधि में। और यह सब मुझे ऐसी दशा में करना है जब मेरे धन्य-धन्य शिष्यगण नितान्त ग़ैर-ज़िम्मेवारी की स्थिति से मुझ पर अपने विनोद या विषाद-भरे स्वतःसिद्ध तर्कों के गोले छोड़ रहे हैं और मुझसे आशा कर रहे हैं कि मैं उनके सामने सब कुछ संकेत-रूप में नहीं बल्कि विस्तार से खोल कर रख दूँ। त्राहि माम्, हे घट-घटवासी भगवान्!

२९.३.१९३६

सरल लिखना बहुत कठिन है, क्योंकि सरल लिखने के लिए सरल भाषा नहीं चाहिये, सरल लिखने के लिए सरल हृदय चाहिये।

—हरिवंशराय 'बच्चन'

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

जनवरी

१. तत्त्वतः जीने का एक ही सच्चा कारण है : वह है अपने-आपको जानना। हम यहाँ सीखने के लिए आये हैं—हम क्या हैं, हम यहाँ क्यों हैं और हमें क्या करना है—यह सीखने के लिए। अगर हम यह न जान पायें तो हमारा जीवन रिक्त है—हमारे अपने लिए भी और दूसरों के लिए भी।

२. इस समय हम फिर से पृथ्वी के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ पर आ खड़े हुए हैं। सब ओर से पूछा जाता है, "क्या होने वाला है?" सब जगह दुःख, प्रत्याशा और भय है। "क्या होने जा रहा है?"... उत्तर केवल एक ही है, "काश, मनुष्य आध्यात्मिक होने के लिए अनुमति भर दे देता!"

३. हे माँ, तुम मेरी बुद्धि का प्रकाश हो, मेरी आत्मा की पवित्रता हो, मेरे प्राण की शान्त शक्ति हो, मेरे शरीर की सहिष्णुता हो। मैं केवल तुम पर ही निर्भर हूँ और पूरी तरह तुम्हारा रहना चाहता हूँ, राह के रोड़ों पर मुझे विजय दिलाओ।

४. प्रभु, हमारे अन्दर चेतना और शान्ति बढ़ती रहें ताकि हम तेरे दिव्य विधान के अधिक-से-अधिक उपयुक्त माध्यम बन सकें।

५. क्या तुम ममता चाहते हो? ममतामय बनो।
क्या तुम सत्य की माँग करते हो? सच्चे बनो।

६. भला करने की कोशिश करो और यह मत भूलो कि भगवान् तुम्हें हर जगह देखते रहते हैं।

७. हित का कार्य, सत्कार्य के प्रेम के लिए करो, किसी पुरस्कार की आशा से नहीं। अच्छे बने रहने के हर्ष के लिए अच्छे बनो, दूसरों की कृतज्ञता पाने के लिए नहीं।

८. भागवत करुणा से प्रार्थना करो कि वह तुमसे हमेशा उचित कार्य उचित ढंग से करवाये।

९. एक दिन आता है जब हमारे अन्दर और चारों ओर सारे व्यवधान ढह जाते हैं और हम पक्षी की तरह निर्विरोध उड़ान के लिए पर तोल सकते हैं।

१०. सौन्दर्य एक महान् शक्ति है।

११. तुम्हारा निजी मूल्य, यहाँ तक कि तुम्हारी व्यक्तिगत उपलब्धि कुछ भी क्यों न हो, लेकिन योग में अपेक्षित पहला गुण है **विनम्रता**।

१२. भागवत उपस्थिति ही जीवन को मूल्य प्रदान करती है। भागवत उपस्थिति ही समस्त 'शान्ति', समस्त 'हर्ष' और समस्त 'सुरक्षा' का स्रोत है। अपने अन्दर इस 'उपस्थिति' को ढूँढ़ो और सारी कठिनाइयाँ ग़ायब हो जायेंगी।

१३. तुम्हें जो चीज़ जाननी चाहिये वह है, ठीक तरह से यह जानना कि तुम जीवन में क्या करना चाहते हो, इसे सीखने में जो समय लगता है उसकी कुछ परवाह नहीं क्योंकि जो लोग 'सत्य' के अनुसार जीना चाहते हैं, उनके लिए हमेशा कुछ सीखने के लिए, कुछ प्रगति करने के लिए होता ही है।

१४. किसी चीज़ के लिए इच्छा न करो, किसी चीज़ के लिए कभी दावा न करो। हर क्षण अपनी शक्यता के अनुसार ऊँचे-से-ऊँचे स्तर पर रहो।

१५. साधना-पथ पर चलने के लिए तुम्हारे अन्दर निर्भीक वीरता होनी चाहिये, तुम्हें कभी इस हीन, तुच्छ, दुर्बल और कुत्सित वृत्ति, अर्थात् भय के कारण पीछे नहीं हटना चाहिये।

१६. तुम जो भी काम करो, जितनी पूर्णता के साथ कर सकते हो करो। यही मनुष्य के अन्दर भगवान् की सबसे अच्छी सेवा है।

१७. भौतिक रूप में, स्थूल रूप में, इस पृथ्वी पर कृतज्ञता के अन्दर ही शुद्धतम आनन्द का स्रोत पाया जाता है।

१८. हम प्रार्थना करते हैं कि भगवान् हमें हमेशा अधिकाधिक सिखायें, अधिकाधिक बोध दें, हमारे अज्ञान को छिन्न-भिन्न करें, हमारे मनों को प्रकाश दें।

भागवत कृपा के प्रति कभी तीव्र और सच्ची प्रार्थना व्यर्थ नहीं जाती।

१९. हमें सतत अभीप्सा की स्थिति में रहना चाहिये, लेकिन जब हम अभीप्सा न कर सकें तो हम एक बालक की सरलता के साथ

प्रार्थना करें।

२०. बहुत अधिक बोलने से व्यक्ति बुद्धिमान् नहीं बनता; व्यक्ति तभी बुद्धिमान् कहा जाता है जब वह क्षमाशील, शत्रुहीन और भयहीन हो।

२१. हमें उस सबसे बचने की सावधानी हमेशा बरतनी चाहिये जो हमारे अन्दर दिखावे के भाव को प्रोत्साहित करता हो।

२२. भागवत कृपा से हमेशा यह प्रार्थना करो कि वह तुमसे हमेशा ठीक चीज़ ठीक तरह से करवाये।

२३. अपनी अभीप्सा को उद्दीप्त और निष्कपट बनाओ और यह कभी न भूलो कि तुम भगवान् के बालक हो। यह तुम्हें कोई भी ऐसी चीज़ करने से रोकेगा जो भगवान् के बालकों के अयोग्य हो।

२४. प्रभो, सुन्दरता और सामञ्जस्य के देव, वर दे कि हम संसार में तेरी परम सुन्दरता को अभिव्यक्त करने-योग्य यन्त्र बन सकें। यही हमारी प्रार्थना और हमारी अभीप्सा है।

२५. कामना को सन्तुष्ट करने का प्रयास करना बेकार है क्योंकि कामना अतिलोभी है और कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकती।

२६. अपनी अभीप्सा में लगे रहो तो तुम्हारा स्वप्न चरितार्थ होगा।

२७. अगर तुम अपनी प्रगति करने की इच्छा में सच्चे हो तो तुम निश्चय ही आगे बढ़ोगे।

२८. जब कोई गड़बड़ होती है तो तुम्हें हमेशा अपने अन्दर ही उसके कारण को ढूँढ़ना चाहिये, छिछले रूप में नहीं, अपने अन्दर गहराई में; और व्यर्थ में अपने दोषों पर रोने-धोने के लिए नहीं बल्कि भगवान् की सर्वसमर्थ शक्ति को अपनी सहायता के लिए बुला कर दोष का उपचार करने के लिए।

२९. ऐसी कोई आदत नहीं जिसे बदला न जा सके।

३०. अपने सारे जीवन को अनुशासित करने की कोशिश करने से पहले कम-से-कम एक क्रिया को अनुशासित करने की कोशिश करनी चाहिये और उसमें सफलता पाने तक लगे रहना चाहिये।

३१. सृष्टि **एक समग्र** है जो अपनी समग्रता में एकमात्र लक्ष्य—भगवान्—की ओर बढ़ रही है—एक सामूहिक विकास के द्वारा, जो सतत और अन्तहीन है।

'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'

सच्चाई का अभाव न हो

जिन दिनों मुझे कुछ अनुभूतियाँ हो रही थीं, एक दिन मैंने श्रीमाँ से कहा, "माँ, मुझे अपना वर्तमान जीवन पसन्द नहीं है। मुझे गुह्य ज्ञान में रस है।" माताजी ने अपने विशेष ढंग से उत्तर दिया, "मैं तुम्हें दो नौकाओं में शिक्षा नहीं दे सकती।" मैंने बात स्पष्ट करने के लिए कहा तो उन्होंने कहा, "तुम हमेशा आते-जाते रहते हो, जब तुम यहाँ जम जाओगे तब देखेंगे।" बहुत दिनों के बाद उन्होंने मुझसे पूछा, "क्या तुमने मेरा लेख पढ़ा है?" (इन दिनों उनका एक लेख छपा था जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे उन लोगों को गुह्य विद्या सिखा सकती हैं जो निःस्वार्थ, निर्भय और कुछ क्षमतावाले हों) मैंने कहा, "जी हाँ माताजी, निःस्वार्थ और निर्भय तो मैं समझ गया परन्तु विशेष क्षमताओं से आपका क्या मतलब है? ये तो भगवान् की दी हुई होती हैं।" जानते हो, उन्होंने क्या जवाब दिया? उन्होंने कहा, "अगर तुम मेरे प्रति समर्पण कर दो तो मैं तुम्हें क्षमताएँ दूँगी।" हमें माताजी और श्रीअरविन्द जैसे गुरु पाने का सौभाग्य प्राप्त है इसलिए हमारे सारे जीवन का अर्थ ही कुछ और है। यहाँ चीज़ों के विरुद्ध शिकायत करना ग़लत है। केवल एक ही चीज़ है जिसके बारे में शिकायत हो सकती है और वह है हमारी सच्चाई का अभाव। श्रीअरविन्द कहते हैं, "अगर हम समर्पित हों तो भागवत स्पर्श **कठिनाई को सुअवसर में, असफलता को सफलता में और दुर्बलता को शक्ति में बदल सकता है**।"

इस सारे ज्ञान का एक लक्ष्य है। यह केवल मनोविज्ञान, मनोविकृति-विज्ञान, मनश्चिकित्सा की वैज्ञानिक खोज नहीं है। अपने व्यक्तित्व को पूर्ण करने के लिए इसे प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ उद्देश्य है अपने व्यक्तित्व को पूर्ण बनाना, श्रीअरविन्द ने कहा है कि जीवन का लक्ष्य है, भगवान् को देश और काल में पूरी तरह व्यक्त करना और इसके लिए मानव व्यक्तित्व को दिव्य रूप से पूर्ण करना होगा। हम सबको श्रीअरविन्द ने यहाँ इसी श्रम के लिए पुकारा है। हमें किन्हीं टटपूँजिया कार्यों के लिए नहीं बुलाया गया है, वे हमारे लक्ष्य नहीं हैं, साधन हो सकते हैं। हम जो भी कार्य करते

हैं वह हमारे व्यक्तित्व को पूर्ण करने का साधन-मात्र होता है। माताजी ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने अपने कार्य के लक्ष्य के बारे में तीन चीज़ें बतलायी हैं: वैश्व सामञ्जस्य के लिए क्रमशः प्रगति करना, उन भागों को व्यक्तित्व या विशिष्टता प्रदान करना जिनमें अभी तक यह नहीं है और देव-पुत्रों की एक नयी जाति को अभिव्यक्त करना। तो कोई महान् शुभ अनुकम्पा हमें उस मूल के सम्पर्क में ले आयी है जहाँ यह रूपान्तर हो रहा है। अब यह हमारा काम है कि हम पूरी सच्चाई के साथ इस अवसर का अच्छे-से-अच्छा लाभ उठाएँ।

जब ओरोवील की योजना बन रही थी तो माँ ने अपने हाथ से लिखा, "हम ओरोवील को अतिमानव का पालना बनाना चाहेंगे।" इसका मतलब क्या हुआ? इसका अर्थ यह हुआ कि ओरोवील ऐसा स्थान होगा जहाँ लोग न केवल अपनी सत्ता के आन्तरिक भागों और स्तरों से ही परिचित हो जायेंगे और उन्हें व्यष्टिगत रूप देने की कोशिश करेंगे और वहाँ लोग न केवल दिव्य पूर्णता का नया जीवन ही जियेंगे बल्कि वह एक ऐसा स्थान होगा जहाँ से एक ऐसी नयी आन्तरिक ज्योति अभिव्यक्त होगी जो अभी तक प्रकट नहीं हुई है। अगर लोग सचमुच मिल-जुलकर एक ऐसे स्थान पर योगाभ्यास करें जो माताजी ने उनके लिए बनाया है, जहाँ उन्होंने अपनी चेतना और कृपा उँडेली हैं, तो उन लोगों के द्वारा एक नयी चेतना फैलेगी जो सारे जगत् को बदल देगी। पुस्तकों, फ़िल्मों, और ऐसी अन्य बाहरी चीज़ों का निर्माण और उपयोग तो होता रहेगा पर उनका महत्त्व कम हो जायेगा। ये छोटी-छोटी सहायताएँ हैं जो भौतिक स्तर पर क्रिया करेंगी, जब कि असली काम अतिभौतिक स्तर पर होता रहेगा।

जब श्रीअरविन्द की जीवनी लिखी जा रही थी तो उन्होंने कहा था कि उनकी जीवनी कोई नहीं लिख सकता क्योंकि उनका जीवन **सतह पर नहीं था जिसे लोग देख सकते**। उनके जीवन का निन्यानवे प्रतिशत तो अन्तर्मुखी था। ऐसे व्यक्ति का जीवन कौन लिख सकता है जो, उदाहरण के लिए अपनी चेतना को महायुद्ध में एक अभीष्ट परिणाम लाने के लिए हज़ारों मील दूर बैठे जनरलों की चेतना के साथ एक कर सकते थे? ऐसी जीवनी कौन लिख सकता है? एक बार तुम योग को अपना लो तो तुम्हारा कार्य हज़ारों नहीं लाखों गुना अधिक शक्तिशाली और समर्थ हो

जायेगा! उसकी सीमा कहाँ है? जो योग हमें श्रीअरविन्द के चरणों की ओर निमन्त्रित करता है वह ध्यान-योग नहीं है, समानता का योग नहीं है, वह *गीता* का योग भी नहीं है। उन्होंने यह बात बहुत स्पष्ट शब्दों में कही है यद्यपि उन्होंने *गीता* पर बहुत ज़ोर दिया है और उस पर भाष्य भी किया है। एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा कि अगर उन्हें केवल *गीता* की बातें ही दोहरानी होतीं तो फिर पूर्णयोग के प्रतिपादन की ज़रूरत ही क्या थी?

एक और बात याद रखो। श्रीअरविन्द ने अपनी पुस्तक 'माता' में सतत, अचूक अभीप्सा के बारे में लिखा है। ये शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। सतत से उनका मतलब २३ घण्टे ५९ मिनट नहीं है। सतत का अर्थ है **सतत**, हमें जानना चाहिये कि अभीप्सा को कैसे हमेशा बनाये रखें—सोते समय, खाते-पीते समय या बातचीत करते समय। हमें इन चार शब्दों को हमेशा अपने सामने रखना चाहिये—सतत और अचूक अभीप्सा—भगवान् को पाने के लिए सचेतन होने, आन्तरिक स्तरों को जानने के लिए, भगवान् की सेवा के लिए गुह्य शक्तियों को विकसित करने के लिए अभीप्सा। तब हमारी अभीप्सा की कोई सीमा न होगी।

बहुत-से लोग कहते हैं कि श्रीअरविन्द का योग कठिन है, लेकिन मैं कहता हूँ कि बात ऐसी नहीं है क्योंकि काम का निन्यानवे प्रतिशत भाग तो वे ही कर देते हैं। अन्यथा यह मुश्किल ही नहीं, असम्भव होता। लेकिन वह एक प्रतिशत है हमारी ओर से सच्चाई, निष्कपटता—यही सबसे अधिक ज़रूरी है। अपनी सत्ता के सभी भागों में भगवान् के प्रति सच्चा और निष्कपट होना। यदि हम प्रगति करना चाहते हैं तो हमें पूरी तरह निःस्वार्थ होना चाहिये। अगर हमारे अन्दर कोई शक्ति विकसित होती है परन्तु भगवान् नहीं चाहते कि हम उसका उपयोग करें तो हमें ख़ुशी से उसे छोड़ देने के लिए तैयार होना चाहिये। जो लोग समर्पित नहीं होते उनकी प्रगति भी नहीं होती। वे जहाँ के तहाँ बने रहते हैं। जब हम पूर्णयोग की साधना करेंगे तो ये सब बातें अपने-आप प्रकट होने लगेंगी। केवल अभ्यास द्वारा ही हम प्रगति कर सकते हैं।

(क्रमशः)

—नवजातजी

सच्चाई भागवत द्वारों की चाबी है। *श्रीमाँ*

हरी-हरी दूब पर

हरी-हरी दूब पर
ओस की बूँदें
अभी थीं, अब नहीं हैं।
ऐसी ख़ुशियाँ जो हमेशा हमारा साथ दें
कभी नहीं थीं, कहीं नहीं हैं।

क्वार की कोख से, फूटा बाल सूर्य,
जब पूरब की गोद में
पाँव फैलाने लगा,
तो मेरी बग़ीची का
पत्ता-पत्ता जगमगाने लगा,
मैं उगते सूर्य को नमस्कार करूँ
या उसके ताप से भाप बनी,
ओस की बूँदों को ढूँढ़ूँ?

सूर्य एक सत्य है
जिसे झुठलाया नहीं जा सकता
मगर ओस भी तो एक सच्चाई है
यह बात अलग है कि ओस क्षणिक है
क्यों न मैं क्षण-क्षण को जीऊँ?
कण-कण में बिखरे सौन्दर्य को पीऊँ?

सूर्य तो फिर भी उगेगा,
धूप तो फिर भी खिलेगी,
लेकिन मेरी बग़ीची की
हरी-भरी दूब पर, ओस की बूँद
हर मौसम में नहीं मिलेगी!

—श्री अटल बिहारी वाजपेयी

एक लघु कथा

एक नगर में एक राजा के महल के पास एक साधु ने धर्म-चर्चा करनी आरम्भ की। नगर के सभी लोग वहाँ धर्म-चर्चा सुनने आते थे। इस धर्म-चर्चा का समाचार राजा तक पहुँचा। राजा ने सोचा कि साधु को अपने महल में लाया जाये। उन्हें महल की शानो शौकत दिखायी जाये। राजा साधु के पास पहुँचे और प्रार्थना की—"महाराज! हमारे महल में आने का कष्ट करें। हमने बहुत उत्तम महल बनवाया है। देश-विदेश के कारीगरों ने अपनी कला से इसे सुसज्जित किया है। दुनिया के अनमोल पत्थर आदि से इसकी सज्जा की है। कृपया, महल में चलिये।" साधु ने विचार किया कि राजा को अपने महल का बहुत 'अहम्' हो गया है। उसके इस 'अहम्' को समाप्त करने के लिए उन्होंने राजा का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। साधु बाबा को राजा ने पूरा महल दिखाया। महल की सारी सुन्दरता का वर्णन करते-करते अपने-आपको राजा आनन्दित कर रहा था, परन्तु साधु उसकी इस मूर्खता पर मन्द-मन्द मुस्कुरा रहे थे। अन्ततः राजा ने एक स्थान दिखाया जहाँ कुछ चित्र लगे हुए थे। उन्हें भी साधु ने देखा। अब राजा ने पूरा महल दिखला कर साधु से पूछा—"महाराज, हमारा महल कैसा लगा?" साधु ने उत्तर दिया—"राजन्! बहुत सुन्दर धर्मशाला बनायी है आपने।" यह सुनते ही राजा सकपका गया। राजा साधु से ऐसे उत्तर की अपेक्षा नहीं रखता था। राजा ने साधु से कहा —"क्या कारण है कि आप इतने सुन्दर महल को एक सराय या धर्मशाला कह रहे हैं?" साधु ने उन चित्रों की ओर संकेत करते हुए पूछा—"ये चित्र किस-किसके हैं?" राजा ने कहा—"पहला चित्र मेरे परदादाजी का, दूसरा मेरे दादाजी का, तीसरा मेरे पिताजी का है और चौथा स्थान ख़ाली है।" साधु ने कहा—"यहाँ पहले आपके परदादाजी, फिर आपके दादाजी, फिर पिताजी, अब आप और फिर आपके बच्चे रहेंगे। आप सदा तो यहाँ नहीं रहेंगे। आपकी मृत्यु के बाद चौथे ख़ाली स्थान पर आपका चित्र लग जायेगा। राजन्, धर्मशाला या सराय भी ऐसी ही होती हैं। वहाँ भी लोग कुछ दिन रहते हैं, फिर छोड़ कर चल देते हैं। इसी प्रकार आपके परदादा, दादा, पिता इस सराय में रह कर चले गये। आपके जाने के पश्चात् आपके पुत्र, पौत्र रहेंगे, यह सराय

नहीं तो और क्या है?"

राजा का अहं टूट गया। उसे वास्तविकता का ज्ञान हो गया। और वह सच्चे अर्थ में ज्ञानी बन गया।

—'हिन्दू सभा वार्ता' से साभार

किसी के काम आओ

कोरा भोगी क्या देगा? पर, कोरा योगी भी क्या देगा? कोरे ध्यानी, कोरे ज्ञानी—चाहे व्यक्ति स्तर से कितने ही बड़े हों, समाज के स्तर पर उनका क्या मूल्य और महत्त्व है।

'उदधि बड़ाई कौन है, जगत् पियासो जाय।'

सागर बहुत बड़ा है, पानी का ख़ज़ाना है, पर—वहाँ प्यासा यदि चला जावे तो उसकी प्यास नहीं बुझेगी!

कोई कितना ही बड़ा हो, वह किसी के काम न आवे तो वह दो कौड़ी का!

एक छोटा-सा पोखर है, कीचड़ भी है, थोड़ा-सा पानी है। प्यासे परिन्दे वहाँ जाते हैं, उनकी प्यास वहाँ बुझती है, वे अपनी प्यास बुझा कर पंखों को फैला कर—अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए—अपने घोंसले की ओर उड़ जाते हैं।

कविवर रहीम ने ऐसे 'पंकजल' की (कीचड़ वाले जल की) महत्ता आँकी है। वे गद्‌गद स्वरों में कहते हैं—'धन्य! धन्य है—यह प्यास बुझाने वाला जल!'

धनी 'रहीम' जलपंक को, 'लघु जिय पिबत अघाय।'

छोटे-छोटे जीव-जन्तु जहाँ तृप्ति का अनुभव कर, अघा कर पानी पीते हैं—वह कीचड़ वाला थोड़ा-सा जल भी धन्य है!

कोई चाहे कैसा भी हो, लोगों की दृष्टि में तुच्छ हो, नगण्य हो—यदि वह किसी के काम आता है तो उसका जीवन सार्थक है, धन्य है। चाहे वह अख़बारी सुर्ख़ियों में न चर्चित हो, न अर्चित हो!

—'वैचारिकी' से साभार

... मेरी ही चक्की का तो पिसा आटा खाया था!

(ऐसा ही होता है और ऐसा ही होता रहेगा कि 'पुरोधा' की पुरानी फ़ाइलें खुली नहीं कि २०-२० साल पहले लिखी कहानियाँ और लेख खींच लेते हैं बरबस अपनी ओर, फिर सादर आसन ग्रहण कर लेते हैं 'अग्निशिखा' के पन्नों पर। अप्रैल २००३ की 'पुरोधा' में छपी इसी तरह की एक आपबीती ने स्थान पा लिया है इस अंक में—सं.)

दोपहर को सोकर उठी तो बन्द आलमारी में हिफ़ाज़त से रखा कलाकन्द आँखों के सामने अपने रसभीने सौन्दर्य में चमक उठा और साथ-ही-साथ मेरे मुँह में भर आया रस। इससे यह न समझ बैठियेगा कि मैं लालची हूँ। वह तो दोपहर को सोकर उठने के बाद अगर मिठाई का एक छोटा-सा टुकड़ा भी मुँह में डाल कर ऊपर से पानी पी लूँ तो मन हरा-भरा हो जाता है।

बस अलसायी-सी उठी। अभी मुश्किल से दो क़दम भी न रखे होंगे कि खड़र-खड़र। "भला कहाँ से आ रही है यह आवाज़?" एकबारगी दिल बैठ गया। "कहीं वह कम्बख़्त मेरी मिठाई पर तो नहीं टूट पड़ा?" लेकिन नहीं, यह आवाज़ चौके से नहीं बल्कि मेरी किताबों की इस आलमारी से आ रही है। मैं सहम उठी—"हे भगवान्, कर दिया आज इस सत्यानाशी चूहे ने मेरी किताबों का चूरा। पहले ही नाकों दम कर रखा है इसने। इसके मारे हर चीज़ को ढक-मूँद कर छींकों पर चढ़ाते-चढ़ाते मेरी हुलिया बन गयी है।" आप कभी मेरे घर पधारें तो लटकते छींकों को देख मन-ही-मन यह न सोचियेगा—"कैसा सौन्दर्य-बोध है इस लड़की का। 'म्यूज़ियम' बना रखा है घर को।" यह आवश्यक है कि उन छींकों की पृष्ठभूमि में आपको निरन्तर चूहे का स्मरण बना रहे और वह भी किसी ऐरे-ग़ैरे नत्थू-ख़ैरे चूहे का नहीं जो आदमी की परछाईं-मात्र से दुम दबा कर बिल में दुबक जाये बल्कि सचमुच गणेशजी के वाहन का जिसके डील-डौल को देख मेरी पालतू बिल्ली तक चुपके से घर से खिसक गयी। शायद ज़्यादा अच्छा हो कि मैं आपको इन मूषक महाराज के जीवन की एक झाँकी दे दूँ।

इसका जन्म कहाँ और कब हुआ था इसका ठीक-ठीक ब्योरा देना

मेरे लिए सम्भव नहीं, किसी शोधकर्ता ने अभी तक इस क्षेत्र में गवेषणा नहीं की है। फिर भी मेरा अनुमान है कि हमारे इलाक़े के किसी घर की सीलन-भरी अँधेरी कोठरी को यह गौरव प्राप्त हुआ होगा। वैसे मैंने कभी चूहों को जन्मजात नहीं देखा। जब-जब देखा है सर्र से, तेज़ी से भागते या कुछ चुरा कर कुतरते पाया है, अतः मेरी तो यही धारणा है कि जन्मते ही ये खाने के पीछे लूटमार मचाना शुरू कर देते हैं। तभी तो इन्हें मूषक की उपाधि दी गयी है—जो दिन-रात चुराते हैं। हाँ तो, इसका शैशव एक नहीं, अनेक घरों में बीता। जहाँ जो हाथ आता उसे ही सप्रेम उदर को समर्पित करते चैन से बीता इसका बाल्यकाल। याद है मुझे अपनी मूर्खता का वह दिन जब वह मेरी देहली पर खड़ा बड़ी ही करुण दृष्टि से इधर-उधर झाँक रहा था। शायद उस दिन उसके हाथ की सफ़ाई ने उसे धोख़ा दे दिया था इसीलिए बेबस, भूखा-प्यासा यहाँ आकर निरीक्षण में लगा था। मेरे अन्दर वैसे तो पशुओं के लिए बहुत ममत्व है, लेकिन छिपकली, चूहे जैसे गिलगिले जानवरों के पास मैं नहीं फटकती। उस दिन, उन दो नेत्रों की असहाय दृष्टि ने मुझे करुणा-विगलित कर दिया और मैंने हाथ की रोटी का एक टुकड़ा दूर से ही उसके सामने फेंक दिया। रोटी का टुकड़ा हवा में उछलते देख कर ही वह निरीहता चमक में बदल गयी और रोटी के ज़मीन पर गिरते-न-गिरते वह उसे लेकर ऐसे चम्पत हुआ मानों मैं उस पर लाठी से वार करने जा रही थी। स्वयं पर गर्व हुआ कि चलो, आज भूखे को अन्न देकर परोपकार किया। लेकिन उस दिन किया गया वह पुण्य आज तक अभिशाप बन कर मेरे इर्द-गिर्द चक्कर मार रहा है। वह बिन बुलाये मेहमान की भाँति ऐन नाश्ते के वक़्त आँखों में निरीहता का भाव लिये आ खड़ा होता मेरे द्वारे। दो-चार दिन तो डटी रही मेरी मूर्खता और डटा रहा अपनी मूर्खता पर गर्व। कभी सोचती—"बिचारा भूखा चूहा! दर-दर की ठोकरें खाता आख़िर मेरी देहली पर आ पहुँचा है, क्या मैं भी इसे दुत्कार दूँ? महान् पाप चढ़ेगा मुझ पर!" कभी याद आ जाती रन्तिदेव की वह कहानी जिसमें जब वे भोजन करने बैठे तो भगवान् ब्राह्मण, श्वान आदि के वेश में उनकी परीक्षा करने आये और उन्होंने अपने मुँह का कौर, बूँद-बूँद पानी तक उनको दे दिया और स्वयं भूखे-प्यासे उठ खड़े हुए। कहीं यह मेरी परीक्षा का दिन तो नहीं है, आदि-आदि भाव मेरे हृदय

में उठते और दे देती मैं भी अपनी रोटी का एक टुकड़ा उसे। फिर गर्व होता अपने-आप पर। लेकिन रोटी का टुकड़ा पाते ही वह निरीहता का परदा यूँ खिसकते देख और आँखों में शैतानी की-सी चमक देख एक दिन मेरा माथा ठनका। कहीं यह शैतान तो नहीं है जो मुझे छलने आता है?

निश्चय कर लिया कि कल से परोपकार बन्द। अगले दिन अतिथि महाराज अपने निश्चित समय पर फिर पधारे तो मैंने उन पर एक कड़ी दृष्टि डाली। वह ज़रा सहम गये। उसकी करुणा छिप गयी और भीतर से प्रकट हो उठी उसकी आँखों में धूर्तता, पलक झपकते-न-झपकते कटोरदान में रखे साबुत पराँठे पर झपट्टा मारा और भाग निकला। मेरी आँखें फटी-की-फटी रह गयीं। इतना साहस, इतनी धृष्टता! लेकिन 'अब पछताये होत का जब चिड़ियाँ चुग गयीं खेत।' प्रोत्साहन दिया तो उसका फल भोगना भी भाग्य में बदा था। अब तो नित नये कारनामे होने लगे। कभी दूध का टोपिया औंधा पड़ा मिलता जो प्राचीन भारत में बहने वाली दूध-दही की नदियों की याद दिलाता, तो कभी डबलरोटी का भीतरी भाग कुतरा हुआ मिलता। एक दिन प्लास्टिक के डिब्बे का एक हिस्सा ग़ायब था, तो दूसरे दिन जाली की आलमारी की एक तरफ़ की जाली का ही नामोनिशान न था। कभी फल का छिलका रह जाता और गूदा नदारद, तो कभी रोटी की पपड़ी इधर-उधर बिखरी मिलती और रोटी अदृश्य। जो कभी अतिथि का मुखौटा पहने विनती करने आया था वही ऐसा निपुण डाकू बन बैठा कि मुझे नाकों चने चबवा दिये। भारत के इतिहास में ऐसी घटनाएँ कम नहीं हैं।

उस दिन तो मेरे छक्के छूट गये जब रसोईघर में खटपट सुन दबे पाँव वहाँ पहुँची। आँखों के आगे अँधेरा छा गया। यह वही है जो उस दिन मेरी देहली पर खड़ा था! ऐसे डील-डौल वाले चूहे तो मैंने कभी नहीं देखे। आकार में बिल्ली से उन्नीस-बीस ही होगा वह। आराम से रोटी ऐसे कुतर रहा था मानों आमन्त्रित हो। न किसी का भय न कोई चिन्ता। और मैंने भी दबे पाँव वापस जाने में अपनी ख़ैर समझी।

वापस आकर किवाड़ बन्द कर दुबक गयी। लेकिन मन ने बहुत कचोटा— "डरपोक कहीं की! यह भी अच्छा मज़ाक है, अपने ही घर में एक चूहे से डर, भीगी बिल्ली बनी बैठी हो। मोटा-सोटा कैसा भी हो, है तो चूहा ही। उसके सामने अपने आकार को देखो, वह चूहा तो तुम शेर हो।" मुझे भी

बात चुभ गयी। प्रण किया कि अपने घर में अपना ही राज होगा, इस मरदूद का नहीं। और तन-मन-धन से लग गयी उसे घर से खदेड़ने। कीलें ठुकीं, नये छींके आये, आनन-फ़ानन चूहे मारने की हर तरह की दवाइयाँ आयीं और साथ-ही-साथ आया एक मोटा डण्डा। खाने की हर एक चीज़ छींकों पर बैठ कर आसमान में चढ़ गयी, चूहे मारने की गोलियाँ घर के आले-कोने में बिखर गयीं और वह डण्डा पलंग के पास कोने में तैनात हो गया। अब देखें किस चूहे की हिम्मत है कि मेरे घर आकर उथल-पुथल करे!

फिर तो मेरा क़रीब एक सप्ताह ज़मीन पर कम और पलंग पर ज़्यादा बीता। बात दरअसल यह हुई कि जब मेरे चिरस्थायी अतिथि को निश्चित समय, निश्चित स्थानों पर भोजन प्राप्त न हुआ तो वह घरघुसना बन बैठा। भोजन की तलाश में यहाँ से वहाँ धमा-चौकड़ी मचा दी उसने। ऐसे आफ़त के परकाले से मैं तो क्या, ब्रह्मा भी बच निकलने में ही ख़ैर समझते। डण्डे से लैस पलंग पर इधर-से-उधर चल कर मैं दूर से ही भिन्न-भिन्न आवाज़ें निकाल, डण्डे को इधर-उधर घुमा कर उसे डराने की कोशिश करती, लेकिन जिसे देख बिल्ली भी दुम दबा कर भाग निकली उसके सामने भला मेरी और मेरे उस डण्डे की क्या बिसात! बस, इतना कर पाती थी कि वह डण्डे की परिधि के बाहर-ही-बाहर घर में ऊधम मचाता फिरता। कभी छींकों को देख ज़मीन से छः इंच उछल पड़ता, तो कभी नाश्ते की मेज़ पर चढ़ कर मूषकावलोकन करता। ऐसे समय भला मैं नीचे उतरती भी तो कैसे? मेरा हफ़्ता बिस्तर पर ही बीता डण्डे के साथ। लेकिन मेरा प्रण अडिग था। पानी की एक बूँद तक न दी मैंने उसे। हफ़्ते-भर बाद सारे दिन मैंने उसकी शकल न देखी। सोचा—कहीं किसी दूसरे घर का अतिथि बन बैठा होगा वह निर्लज्ज! लेकिन मैंने छींके उतारने की भूल न की।

आख़िर एक दिन दिखायी पड़ा मेरा पुराना अतिथि। बाज़ार से लौटी तो देखा रसोईघर में जूठे बर्तन की दाल चाट रहा है। आँखों पर विश्वास न हुआ। यह वही है जो बिल्ली का मुक़ाबला करता था? सूख कर काँटा बन चुका था, शकल निकल आयी थी, आँतें तक दिखायी पड़ रही थीं। "ओह! कितनी निष्ठुर हूँ मैं! दे दूँ एक रोटी का टुकड़ा?" लेकिन तभी वह अतीत आँखों में उतर आया जब अपने ही घर मेरा जीना दुश्वार था। उस सुखचिम्मड़ को देख साहस स्वयं ही उतर आया और मैं दबे पाँव उसके

पास पहुँची। ज़रा-सी घुड़की दी और उसने सहम कर मेरी ओर देखा और यह जा वह जा। वही जो कुछ दिन पहले तक मुझे आँखें दिखाता आया था आज मेरी हलकी-सी घुड़की से जान बचाकर निकल भागा! और सचमुच उस दिन मैंने चैन की साँस ली।

शायद उस अतिथि को मुझसे लगाव हो गया था। शायद मुझसे नहीं, मेरे घर के खाद्य पदार्थों से प्रेम हो गया था, तभी हर दूसरे-तीसरे दिन लगा जाता था चक्कर। और कभी-कभी मेरी लापरवाही से छूटी कोई चीज़ उसके उदरस्थ हो जाती। लाख सावधानी बरतने पर भी कभी दूध नीचे धरा रह जाता, तो कभी जाली की आलमारी खुली रह जाती। बस, उस दिन उसकी दावत होती और मेरा फ़ाका।

लीजिये, मैं भी ख़ूब निकली, कहाँ कलाकन्द के सपनों में आपको सराबोर करना चाहती थी और कहाँ एक निकृष्ट चूहे पर उतर आयी, उसका आदि से अन्त आपके सामने खुली किताब की तरह रख दिया। नहीं, नहीं, अभी अन्त कहाँ! वह तो अब आयेगा!

फिर से खटर-पटर, खटर-पटर होने लगी। मेरी किताबों की आलमारी में वह शैतान घुस कर बैठा है। बस मैंने भी ठान ली। पुस्तकें मुझे बेहद प्रिय हैं, अब अगर इनके पन्नों पर भी उसका मुँह लग गया तो फिर मैं कहीं की न रहूँगी। और मन में निश्चय कर लिया कि न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। आज इसका काम तमाम करना ही होगा। यह सोच, साहस बटोर कई दिनों से कोने में उपेक्षित पड़े डण्डे को पुचकार कर उठा लायी और शुरू हो गया मेरे विचारों का सिलसिला—

"अब क्या करूँ?"

पहले सोचा—"झटके से आलमारी खोल उस आततायी पर भरपूर वार कर दूँगी। डण्डा सिर पर न भी पड़ा तो पूँछ के पहले किसी भी हिस्से पर तो पड़ ही जायेगा और फिर..."

"नहीं, नहीं, नहीं, ओह, कैसी क्रूर हूँ मैं, निष्ठुर।" और मेरी आँखों के आगे उसकी काल्पनिक दर्दनाक मौत नाचने लगी।

फिर सोचा—"चलो, झटके से आलमारी खोलूँगी, लेकिन वार ज़रा हलके हाथों से करूँगी जिससे वह पलट कर कभी इधर का रुख़ ही न करे।"

युक्ति कुछ जँची। लेकिन फिर उसने भी मुँह मोड़ लिया। मुझे भी

बचपन में न जाने कौन-सी चक्की का पिसा आटा खिलाया गया था कि बूँद-भर ख़ून, हलके से नील, ज़रा से घाव से भी दिल सहम जाता है और वहाँ तो मुझे डण्डा चलाना था। "नहीं, नहीं, भगवान् ने मुझे डण्डा उठाने-भर की शक्ति दी है, उसके बाद उसे किसी पर चलाने की शक्ति लेश-मात्र भी नहीं दी।"

वह डण्डा फिर उसी कोने में पहुँच गया और मैं पहुँच गयी कुर्सी पर, सिर हाथों में टिकाये हुए।

"आलमारी खोल उसे घुड़की दे निकाल दूँ? ओह! कैसी बेवकूफ़ी-भरी बातें! कहीं उस घुड़की से उसकी साँस रुक जायेगी या आना बन्द हो जायेगा?"

"तो फिर पड़ोस के किसी लड़के को बुला उस पर डण्डा चलवाऊँ? ओह, नहीं, नहीं, नहीं!"

पड़ोस शब्द के साथ-ही-साथ उछल पड़ी मैं कुर्सी से। युक्ति निकल आयी थी। पानी से लबालब भरी बाल्टी कमरे में पहुँची, फिर पड़ोस की निन्नी को "चल जादू दिखलाऊँगी" का लालच दिखा घर पर ले आयी। आप भी मेरी बुद्धि की दाद देंगे। निन्नी से बोली—"देख, जब मैं एक, दो, तीन कहूँ तो तू झट से आलमारी की चाबी घुमा उसे खोल देना" और मैं स्वयं बाल्टी उठाये तैनात थी। अब तो आप समझ ही गये होंगे। जैसे ही वह मुआ निकलेगा उस पर अटाटूट पानी की ऐसी बौछार पड़ेगी कि बस—उसके आगे न मैं सोचना चाहती थी, न ही कल्पना कर सकती थी, और अधिक कुछ सोचती भी तो मेरा मोम का बना दिल फिर पिघल उठता और समस्या जहाँ-की-तहाँ धरी रह जाती।

'तीन' के साथ ही दरवाज़ा खुला, बाल्टी खाली हुई। निन्नी उछलती-कूदती ताली बजाती—"ओह, कित्ता अच्छा जादू, कित्ता अच्छा जादू!" कह नाची और मैं सिर पीट ज़मीन पर धम् से बैठ गयी।

कमरे में बाढ़ आ गयी थी और उस बाढ़ में बह चलीं मेरी तीन-चार प्रिय किताबें। उस दुष्ट ने ख़तरे को भाँप लिया था और दरवाज़ा खुलते ही किताबों पर लात मार उनके पीछे-पीछे निकल भागा। वेग से पानी डाल जिसकी धज्जी उड़ानी थी वह तो बस गीला हो दुम दबा कर भाग निकला और गत बन गयी मेरी अपनी ही किताबों की!

निन्नी कब हँसती-कूदती तालियाँ बजाती निकल गयी और वह पानी भी ढलाव में बहता-बहता छज्जे से होता हुआ सड़क पर चल रहे यात्रियों की कितनी गालियों का भाजन बना, इसका मुझे कोई होश नहीं।

जब होश आया और किताबों के साथ-साथ वह चूहा भी आँखों के आगे घूम गया तो अपने को क़ाबू में न कर पायी। पहले आँसुओं की बाढ़ आयी, फिर क्रोध से शरीर तिलमिलाने लगा। अगर उस समय वह कहीं दीख जाता तो उसे बन्दूक से उड़ा देती। लेकिन उस दिन का गया वह फिर लौट कर मेरी देहली तक भी न आया।

उस पर मेरा पहला और अन्तिम प्रहार कामयाब रहा। शायद मेरी तरह मेरे अनाहूत अतिथि का दिल भी ज़रा कोमल होगा कि जो उस एक प्रहार से ही मुँह छिपा कर भाग निकला। बात असम्भव नहीं, आख़िर उसने भी तो मेरी ही चक्की का पिसा आटा खाया था!

—वन्दना

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू,
पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

2023

January

S	M	T	W	T	F	S
1	2	3	4	5	6	7
8	9	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28
29	30	31				

February

S	M	T	W	T	F	S
			1	2	3	4
5	6	7	8	9	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28				

March

S	M	T	W	T	F	S
			1	2	3	4
5	6	7	8	9	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28	29	30	31	

April

S	M	T	W	T	F	S
						1
2	3	4	5	6	7	8
9	10	11	12	13	14	15
16	17	18	19	20	21	22
23	24	25	26	27	28	29
30						

May

S	M	T	W	T	F	S
	1	2	3	4	5	6
7	8	9	10	11	12	13
14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27
28	29	30	31			

June

S	M	T	W	T	F	S
				1	2	3
4	5	6	7	8	9	10
11	12	13	14	15	16	17
18	19	20	21	22	23	24
25	26	27	28	29	30	

July

S	M	T	W	T	F	S
						1
2	3	4	5	6	7	8
9	10	11	12	13	14	15
16	17	18	19	20	21	22
23	24	25	26	27	28	29
30	31					

August

S	M	T	W	T	F	S
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28	29	30	31		

September

S	M	T	W	T	F	S
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30

October

S	M	T	W	T	F	S
1	2	3	4	5	6	7
8	9	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28
29	30	31				

November

S	M	T	W	T	F	S
			1	2	3	4
5	6	7	8	9	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28	29	30		

December

S	M	T	W	T	F	S
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30
31						

सत्य कठिन और श्रमसाध्य विजय है। यह विजय पाने के लिए तुम्हें सच्चा सैनिक होना चाहिये। एक ऐसा सैनिक जो किसी से नहीं डरता; न शत्रुओं से न मृत्यु से, क्योंकि यह संघर्ष सबके साथ और सबके विरुद्ध, शरीर के साथ और शरीर के बिना चल रहा है और इसका अन्त परम विजय में होगा।

श्रीमाँ

शुभ कामनाओं सहित

श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,

जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)

www.aurosocietyrajasthan.org

Sri Aurobindo Society
INDORE BRANCH
Creating the Next Future

विज्ञप्ति अनुरोध

'श्री अरविन्द-विश्व-निलयम्' नव-निर्माण हेतु

आदि शक्ति मां भगवती एवं परम प्रभु की असीम कृपा और आशीर्वाद से श्री अरविन्द सोसायटी पुडुचेरी शाखा इन्दौर द्वारा एअरपोर्ट के निकट सर्वे क्रमांक 126/8, छोटा बांगड़दा में अपने स्वामित्व की 13,495 वर्गफीट भूमि पर दिव्य समाज निर्माण की आध्यात्मिक गतिविधियों के संचालन हेतु एक शक्तिपीठ पूर्ण योग साधना एवं ध्यान केन्द्र श्री अरविन्द–विश्व– निलयम् के नव–निर्माण का कार्य 25 जनवरी 2021 से शुभारंभ हो चुका है।

आपको यह सूचित करते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है कि उक्त वृहद् कार्य –निर्माण के प्रथम चरण में तल मंजिल, प्रथम मंजिल एवं द्वितीय मंजिल जिसमें सर्व सुविधा युक्त हॉल, श्री माँ – श्री अरविन्द के दिव्य – ग्रन्थों की लायब्रेरी, अतिथि –कक्ष, किचन, डाइनिंग हॉल तथा एक रमणीय उद्यान में श्री अरविंद के दिव्य – देहांश की प्रतिष्ठा हेतु समाधि स्थल के निर्माण का लक्ष्य है। भविष्य में इसे विस्तार देने की योजना है।

इस दिव्य निर्माण कार्य की अनुमानित लागत 2.5 करोड़ रूपये है। यह कार्य सभी के सहयोग तथा सामूहिक प्रयास से ही संभव हो सकता है। आपके द्वारा दी गई दान–राशि को आयकर अधिनियम की धारा 80(G) के अंतर्गत छूट की सुविधा है।

आपकी दान–राशि "श्री अरविन्द सोसायटी इन्दौर" के नाम से Cash /Cheque /DD/ NEFT/ RTGS में स्वीकार कर रसीद प्रदान की जाएगी। आपका आर्थिक सहयोग इस दिव्य कार्य को गति प्रदान करेगा ।

निवेदक

चेअरपर्सन
डॉ.सुमन कोचर
sumankocher@rediffmail.com

सेक्रेटरी
मनोज कियावत
mkiyawat@gmail.com

आप QR कोड स्केन करके भी डोनेशन कर सकते हैं।

Bank Details –
A/C Name - Sri Aurobindo Society Indore
SB A/C No.- 0325101016104
Bank Name – Canara Bank
Branch – M. G. Road Indore – 2 (M.P.)
IFSC Code - CNRB0000325

Branch Office: 541, M. G. Road, Gorakund, OPP. ICICI Bank, Indore (M. P.) – 452 002
Phone: 0731- 2452500, Mob: 9826067685 ,9826066520
Email: sasindore@aurosociety.org, Website: www.sriaurobindosocietyindore.com
Head Office: Puducherry – 605 001, Website: www.aurosociety.org

Date of Publication: 1st January 2023
Rs. 30 (Monthly)

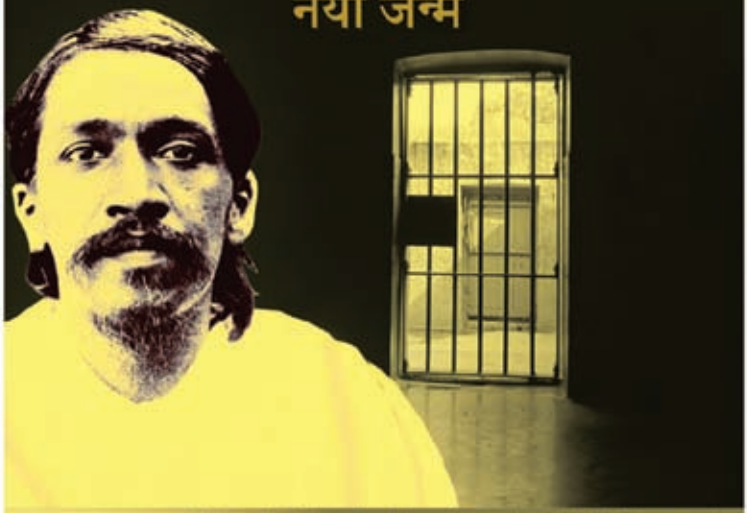

Registered: PY/47/2021-23
RNI No. 18135/70